कावेरी में कमल

(तीन एकाङ्की)

लक्ष्मीनारायण मिश्र

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉ० नं० ७०, ज्ञानवापी
वाराणसी–१

मुद्रक
अनन्त मुद्रणालय
वाराणसी

पात्र

करिकाल	चोल- नरेश
महादेवी	करिकाल की पत्नी
कुमार	करिकाल का पुत्र
मन्त्री	करिकाल का मन्त्री
कावेरी	प्रतिहारी
अलका	नर्तकी
टाइटस	रोम का एक श्रेष्ठी
सोफी	टाइटस की कन्या
केटर	रोम का एक अन्य श्रेष्ठी

पहला दृश्य

[समुद्र का गर्जन और वायु की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। बीच-बीच में इस घहराहट के साथ माँझियों के पतवार और उनके कंठ का स्वर एक साथ ऊपर उठ कर प्रतिध्वनि पैदा कर रहा है। चोल-नरेश करिकाल श्रीवितान के नीचे सिंहासन पर राज-सभा में बैठे हैं। सामने भद्रपीठ पर मन्त्री हैं।]

वैतालिक—[दूर से सुनाई पड़ती ध्वनि] सूर्यदेव दिन के चौथे पहर में पैर दे रहे हैं।

करिकाल—तीन पहर दिन बीत गया मन्त्री। चौथा पहर भी बीत जाए, तब...

मन्त्री—आपके यश में कलंक लगेगा तब महाराज ! सब कहीं यह बात फैल जायगी कि चोल-नरेश अपनी सीमा के समुद्र को सुरक्षित न रख सके...

करिकाल—[कड़े शब्दों में] इतना ही...

मन्त्री—इससे बहुत अधिक देव ! टाइटस केवल रोम का धन-कुबेर और जल-यानों का स्वामी ही नहीं है, वहाँ की राज्य-परिषद् का प्रमुख सदस्य भी है। कावेरीपत्तनम् से तीन योजन के भीतर के समुद्र में उसी के पोत पर से उसकी सुन्दरी कन्या उठा ली गयी है। उसके चालीस रक्षक मारे गये हैं। इस घटना से रोम की नदी तीव्रा में लहरें उठने लगेंगी। सभी उपाय किये जा रहे हैं; मुझे विश्वास है संध्या तक भेद खुल जायेगा।

करिकाल—अभी तक नहीं खुला ? कल संध्या को मुझसे कहा गया था कि आज यह भेद खुल कर रहेगा।

मन्त्री—सभी सम्भव उपाय किये जा रहे हैं।

करिकाल—[हाथ पटक कर] जहाँ हम लोग इस समय बैठे हैं, इस राज-भवन की भूमि पर कुल पाँच वर्ष पहले कौन रहता था मन्त्री?

मन्त्री—जल-दस्यु कालमणि, महाराज! जिसके नाम से चीन और ब्रह्मा देश के, मिस्र, ईरान, रूस, यवनान और रोम के व्यापारी काँपते रहते थे।

करिकाल—कहाँ है वह आज?

मन्त्री—होगा कहीं नरक के किसी गहरे गर्त में।

करिकाल—[क्रोध की हँसी] हा...हा...हा...हा...! यही खड्ग है, और बाँह मेरी यही है मन्त्री! उसका सिर काटने का पुण्य मेरी इसी बाँह और इसी खड्ग को है। जल-दस्युता रोकने के लिए ही पाँच योजन लम्बा और चौड़ा वन कावेरी के दोनों ओर काट कर जलाया गया। देश और विदेश के व्यापारी सुरक्षित हुए। कालमणि के दो सौ से ऊपर साथी, जो मिल गये, मारे गये। उनके आखेट-पोत घी और वसा लगा कर जलाये गये। वह भू-खण्ड, जो समुद्र से लगा है, समुद्री सार्थवाहों के रक्त और आँसुओं का, भय और विषाद का था...

मन्त्री—वहीं देवपुरी को लजाने वाले इस नगर का निर्माण कर आपने इसका यश समुद्र के उस ओर तक पहुँचा दिया।

करिकाल—भृगुकच्छ, शूर्पारक और कल्याणी पश्चिम के समुद्र तट पर थे ही। पूर्व में मणिपल्लवम् और मुचुरि थे, जहाँ विदेश की सम्पत्ति पोत ला कर बरसा देते थे। इस भूमि का कलंक मिटाने को, इस पुहार या कावेरीपट्टनम् का निर्माण हुआ। सबसे पहले बड़े से बड़े पोत की ऊँचाई भर मरुवरपाक्कम् का मंच समुद्र

के भीतर बनाया गया, जो आयतन में संसार के सभी समुद्री नगरों के ऐसे मंचों से पाँच गुना बड़ा है...जहाँ एक साथ सौ पोत खड़े हो सकते हैं। राज-मार्ग, रथ-मार्ग, आपण-मार्ग, बना कर फिर वर्ण और वृत्ति के योग्य इस भूमि को मरुवरिपाक्कम् और पट्टीनपाक्कम् के दो भागों में बाँट कर नागरिकों और राजकर्मचारियों के भवन बने। पाँच वर्षों से विदेशी भद्र इसके रचना-कौशल, योजना और संगठन को देख कर दाँतों तले उँगली दबाते रहे हैं।

मन्त्री—यवन और रोमक श्रेष्ठी जितनी सुविधा और सुन्दरता से यहाँ बसे हैं, किसी भी पुराने समुद्री नगर में नहीं मिलेंगे।

करिकाल—इसलिए कि उन नगरों का निर्माण किसी वास्तु-योजना से नहीं हुआ था।

मन्त्री—नगर पहले से बसे थे, विदेशी आये, जहाँ भूमि मिली, बसने लगे...देशी-विदेशी सब एक साथ।

करिकाल—उन नगरों में विचार और विज्ञान की कसौटी न चल सकी। पर इस घटना से इस नगर की साख भी मिट गयी। प्रतिज्ञा कर चुका हूँ मंत्री, आज संध्या तक...

मन्त्री—दंड-नायक गुप्तचरों के साथ कल रात से इसी में लगे हैं।

करिकाल—हूँ...मेरे निमन्त्रण और विश्वास पर विदेशी यहाँ बसे थे। रोम इस समय जगत् का सबसे बड़ा राज्य है; भूमध्य-सागर जिसका आँगन बना है और जिसके चारों ओर की विस्तृत भूमि पर रोम की ध्वजा फहरा रही है। जहाँ के सैनिक पैर से सोना छितराते चलते हैं, वह सोना जिसे हम सिर से लगाते हैं, हमारी रमणियाँ कमर से नीचे जिसका आभूषण नहीं पहनतीं।

जहाँ एक स्वतन्त्र नागरिक की सेवा में कम से कम पाँच क्रीत दास और एक रमणी के पीछे पाँच दासियाँ हैं। जहाँ की विलासिनी किशोरी का प्रसाधन इसी देश के वस्त्र से, गंध से, चंदन से, अंगराग, केसर, मृगमद और यहाँ तक कि कज्जल से भी हो रहा है।

मन्त्री—समझ रहा हूँ देव! जो सामग्री हम भेजते हैं, उसका मुँह-माँगा मोल हम पीले सोने के खंडों और उसी की धूलि में लेते हैं। शस्त्र और सेना से रोम नये देश जीत कर धन कमा रहा है। और वही धन हम बैठे-बैठे व्यवसाय से उस देश की रमणियों के विलास के बहाने खींच रहे हैं। रोम के एक पोते से एक लाख का सोना हमारे मरुवरपाकम् के मंच पर बरस जाता है।

करिकाल—और रोम के विचारक अब इस सोच में पड़ गये हैं कि हमारे व्यवसाय से अपने धन की रक्षा किस प्रकार करें। कला और सौन्दर्य के प्रेमी रोमक तरुणों पर किस अंश तक हमारे प्रसाधनों का उन्माद छा गया है, यह तो वहाँ जा कर देखते बनो। गोरी किशोरियों के अंग हमारे श्वेत हंस-पंख के भीतर से झाँकते हैं, हमारे अंगरागों के कई रंगों में उनकी त्वचा चित्रित हो उठती है। केश से अगरु की, मुख से मृगमद की, कण्ठ और वक्ष से केसर और चंदन की...अंग-अंग से, पोर-पोर से, कोई न कोई गन्ध जो उनके प्रेमियों को मिलती है, यहीं से जाती है। और इस विलास में धन फूँकने का विरोध वहाँ के विचारक कर रहे हैं। जिन अंगों पर हमारे वस्त्र चढ़ चुके हैं, दूसरे वस्त्र उनमें गड़ेंगे, शृंगार के

उपादान जिन आँखों में बस गये हैं उनसे निकलेंगे नहीं। बने रहें रोम के विलासी और उनका रमणी-मंडल बना रहे।

मंत्री—मुझे विश्वास है महाराज। कावेरीपत्तनम् का यश बना रहेगा। टाइटस की कन्या मिल जायेगी।

करिकाल—फिर भी इस घटना से यह तो पता चल गया कि जलदस्यु अभी यहाँ हैं और अपना कार्य भी कर रहे हैं।

मंत्री—इसे ठीक जल-दस्युता नहीं कहेंगे महाराज। टाई... टाई...उँह...इन विदेशियों का नाम कितना टेढ़ा होता है!

करिकाल—अभ्यास की बात है। हमारे तमिल शब्द वे बेचारे बोल भी नहीं पाते। हम तो उनका नाम ही नहीं, उनकी भाषा भी बोल लेते हैं। उनके विशिष्ट जन क्या कहे जाते हैं?

मंत्री—पात्रीशियन।

करिकाल—आप यहाँ जिस ग्राम में रहते हैं, उसे क्या कहते हैं?

मंत्री—पट्टीनपाक्कम् [हँसता है।]

करिकाल—रोम के जितने श्रेष्ठी...उनके साथ के जितने विद्वान हैं, किसी से पूछ देखिए कह पाता है पट्टीनपाक्कम्? जिस किसी से पूछ देखिए, उसकी जीभ तालू में अटक कर फड़फड़ाने लगेगी।

मंत्री—जी...मिर्च और खटाई के भोग से जीभ पतली पड़ती है। [करिकाल हँसने लगता है।] क्या कह रहा था मैं?

करिकाल—यह केवल जल-दस्युता नहीं है, यही।

मंत्री—जी हाँ, यह केवल जल-दस्युता नहीं है। इस अनुमान को मैं सिद्ध कर दूँगा।...मदिरा का एक भाण्ड नहीं गया। सोने

का एक कण नहीं। पात्रीशियन टाइटस के जलपोत 'सिन्धु-सिंह' पर जलदस्युओं ने आक्रमण किया। टाइटस के चालीस रक्षक मारे गये, पर उस पर की मदिरा जैसी की तैसी बनी रही। सोने का एक कण भी नहीं गया। रोमक श्रेष्ठियों के जल-पोत में यही दो पदार्थ रहते हैं। इन्हीं के लोभ में जलदस्यु प्राण को पासे पर रक्खेंगे। पर यहाँ इन दोनो पदार्थों को ओर किसी ने देखा भी नहीं।

करिकाल—यही विस्मय है। केवल टाइटस की सत्रह वर्ष की सुन्दरी कन्या उस पोत से उतारी गयी है।

मंत्री—और इसका मूल कारण कावेरीपत्तनम् के किसी भवन में या समीप के वन में नहीं...निश्चय है, रोम के किसी बड़े सामन्त के भवन में है। जहाँ कक्ष के नीचे पारस का अनेक रंगों और आकृतियों में चित्रित अधोपट बिछा है। सोने के पाये और आधार-दंड का बना बीच में पलंग है। जिस पर कोमल बिछावन बिछा है, जिसकी दीवारों पर विलास और कामना के चित्र लगे हैं। जिस कक्ष में पलंग पर कोई पात्रीशियन तरुण काम-ज्वर से पीड़ित कराह कर ऊँची साँस छोड़ रहा है।

करिकाल—टाइटस की सुन्दरी कन्या सोफिया के लिए मंत्री?

मंत्री—हाँ महाराज! जो यह सत्य न हुआ तो मैं यह शीश-बन्ध और यह अधिकार-दंड श्रीमान् के चरणों में धर दूँगा। धन का व्यवसाय हम जानते हैं। तोल में हाथी-दाँत के तीन-गुना कभी-कभी हम सोना ले लेते हैं, मोती और वैदूर्य का लाभ ग्राहक की

शक्ति के अन्तिम अनुपात तक हम पहुँचा देते हैं। मसाले इस वर्ष अच्छे नहीं रहे, मेघ दानी या कृपण रहा, धरती नीरस हो गयी...यह कह कर जब चाहा मोल ऊँचा कर दिया। उसने लिया नहीं तो फिर हम ढंग से बराबर उतरते गये और बेच लिया, इसके आगे हम नहीं जानते थे। हम नहीं जानते थे, रूप और यौवन का भी व्यवसाय होता है।

करिकाल—मंत्री, भावों के इतने रंग आपके मुख पर बन-बिगड़ रहे हैं।

मन्त्री—कल्पना और भावों के पंख पर उड़ा जा रहा हूँ मैं रोम के उस भवन में, जहाँ सोफिया का प्रेमी करवटें बदल रहा है। सत्रह वर्ष की तरुणी, इस देश के महीन वस्त्रों में अपने अंगों की मोहिनी किसी पर डाल कर दीप-शिखा-सी किसी के हृदय में अनुराग की लौ लगा कर चल पड़ी समुद्र पर...पार करने क लिए नहीं महाराज, डूबने के लिए। उसक आचरण का अपराध हमारा अपराध बन गया है।

करिकाल—हूँ...आप कहते हैं इस जल-दस्युता के मूल में कावेरीपत्तनम् या कहीं समीप के लोग नहीं हैं। यहाँ भी यह रोम की राजनीति का रंग है, यही न ?

मन्त्री—जी, उसका चाहने वाला रोम में है। हो सकता है, वह भी यहीं आ गया हो। सोफिया किसी जलदस्यु के घर में नहीं है, पचास कोस उत्तर-दक्खिन के वन-पहाड़ छान लिये गये।

करिकाल—हा-हा ! वन-पहाड़ में वह सुन्दरी एक दिन भी न जी सकेगी मन्त्री !

मन्त्री—मसवरिपाकम् में जो रोमक धन-कुवेरों के विशाल भवन हैं, उन्हीं में कहीं वह होगी, या जो कहीं उसका अंत कर दिया गया हो !

करिकाल—नहीं-नहीं ! उसके प्राण से किसी को क्या मिलेगा ? कौन पुरुष होगा जो उसका प्राण लेना चाहेगा ।

मन्त्री—राजनीति के लिए रोम के सामन्त स्त्री-वध भी करते हैं श्रीमान् !

करिकाल—हैं ! स्त्री-वध ! ! राजनीति के लिए ?

राजभृत्य—[प्रवेश कर] दंडनायक प्रसाद चाहते हैं महामन्त्री !

करिकाल—भेज दो यहीं । कोई सूचना मिल गयी तब...

मन्त्री—कह दो वासुकि, मैं अभी आ रहा हूँ ।

करिकाल—उनके साथ रोमक श्रेष्ठी टाइटस भी हैं...

मन्त्री—हूँ...तुम चलो । [**भृत्य का प्रस्थान**] महाराज, इस घटना की अधिक चिंता आप को है यह बात टाइटस पर नहीं खुलनी है । आपके सामने उपस्थित होने का लाभ भी दंडनायक को नहीं मिलना चाहिये । वन-पर्वत का जल बटोर कर नदी जैसे समुद्र के समीप आती है, राज्य की सारी सूचनाएँ ले कर वैसे ही मंत्री महाराज की सेवा में आता है ।

करिकाल—तब मैं यहाँ से चला जाऊँ...

मन्त्री—यह समय महाराज के उपवन-सेवन का है ।

करिकाल—अभी एक पहर दिन है ।

मन्त्री—तीन घड़ी महाराज । वैतालिक की सूचना घड़ी भर

पहले मिली थी। आप टाइटस को प्रसाद दें। दंडनायक से तब तक मैं पूछता हूँ। प्रतिहारी...

करिकाल—यहाँ उसका नाम कावेरी है...

मन्त्री—और राजधानी में ?

करिकाल—चपला। मेरे प्रवास में प्रतिहारियों के नाम बदल जाते हैं।

मन्त्री—हूँ...यह कर्म...नाम बदलने का...

करिकाल—[हँस कर] यह इतना कार्य मैं अपने आप कर लेता हूँ। मंत्री की राय नाम बदलने में नहीं लेता मैं। कावेरी कह कर बुलाइए...तब वह आ जायगी।

मन्त्री—कावेरी !

कावेरी—[प्रवेश कर] जय हो महाराज की, कहिए मन्त्री जी, कोई आदेश ?

मन्त्री—तुम यहाँ महाराज के समीप रहो, चँवर ले कर...

कावेरी—केवल चँवर ?

करिकाल—हा...हा...हा...! कन्धे में धनुष डाल लो। पीठ पर तरकस लटका लो, एक हाथ में खड्ग ले लो और दूसरे में चँवर, आगे की बात पूछ लो मन्त्री से...

मन्त्री—त्रिभंग पर खड़ी हो कर रोम के श्रेष्ठी टाइटस की ओर, कुछ ऐसे देखना कि...

करिकाल—रोम की विलासिनियों के कटाक्ष उन्हें भूल जाएँ।

कावेरी—और श्रीमान् इसकी अनुमति देंगे मुझे ?

करिकाल—स्त्री की आँखें न तो किसी राजा की अनुमति

मानती हैं और न किसी मन्त्री को । सब ओर से स्वतंत्र संसार में बस रमणी की आँखें होती हैं ।

मन्त्री—[हँस कर] तो फिर मैं चलूँ । टाइटस से महाराज अपनी चिन्ता न खुलने देंगे ।

[मन्त्री का प्रस्थान]

कावेरी—महाराज को कोई चिन्ता है ?

करिकाल—हमारी सीमा के समुद्र में रोम के सामन्त टाइटस की सुन्दरी कन्या का अपहरण हुआ है । उनके पोत के चालीस सैनिक मारे गये हैं। कावेरीपत्तनम् के माथे जलदस्युता का कलंक लगा है । तीन दिन बीत गये, इसका भेद भी नहीं खुला अभी ।

कावेरी—कुंडल में नीलम जड़े थे, एकावली के दर्पण में हीरा था । चकित हरिणी-सी उसकी आँखें, नीले कमल में रतनार डोरे, पतले तिरछे ओठों के भीतर उजले सघन दाँत, राजकुमार के ग्रीष्म-कक्ष में किसी रोमक युवक के साथ वह घुस रही थी । द्वार-तोरण की मणियाँ उसके सिर पर जब पड़ीं, समुद्र से निकली लक्ष्मी-सी लगी वह ।

करिकाल—राजकुमार के ग्रीष्म-कक्ष में ? रोम के किसी तरुण के साथ कोई कन्या थी वह ? क्या अवस्था रही होगी ?

कावेरी—दस वर्ष की हथिनी की चाल जैसी होती है महाराज ! ...मन्द, मन्थर, गुरु, गंभीर···सोलह के ऊपर पैर बढ़े थे, महीने दो महीने, तीन महीने या जितना...

करिकाल—वस्त्र और वेष उसका ?

कावेरी—यहाँ रोम की युवतियों के जो दो वस्त्र हैं, कटि के नीचे का, और ऊपर का। इनके पुण्य-गृहों में यहाँ जो वस्त्र-वेश उन कन्याओं का है जो ग्राहकों को मदिरा-पात्र में अपनी सुघराई भी पिला देती हैं। वह कन्या कदाचित् किसी बड़े सामन्त घर की थी। उसके किरीट में मोती की लड़ियों के बीच चार बड़े हीरे दमक रहे थे और पारस के बेल-बूटेवाले वस्त्रों के बने उसके उपानह पर भी मोती की दो लरें चढ़ी थीं।

करिकाल—[उद्वेग में] कावेरी !

कावेरी—जी, कृपानाथ !

करिकाल—टाइटस की सुन्दरी कन्या सोफिया तो नहीं थी वह, जिसके भेद की कोई बात दंडनायक और मंत्री तक को नहीं मिल सकी अभी ?

कावेरी—कौन जाने ? वहाँ की सुवासित मदिरा का प्रेम जिस वेग से बढ़ रहा है इस कावेरीपत्तनम् में यहाँ के तरुण जिन ललचाई आँखों से इन सोने की पुतलियों को देख रहे हैं, उसका अन्त कहाँ होगा ? इनके साथ सम्बन्ध करना जो आप दंडनीय न बना देते तो इस भूमि की साँवली किशोरियाँ अपने जन्म को रोतीं और सब घरों में यही सोने की पुतलियाँ पहुँच गयी होतीं।

करिकाल—हमारी किशोरियों से सचमुच अधिक रूपवती हैं ये रोमक कन्याएँ...

कावेरी—सुन्दरी का रूप स्त्री की आँखों से नहीं देखा जाता महाराज ! उसे देखने को पुरुष की आँखें होनी चाहिए। यह तो आपको पता होगा कि जिस पण्य-वीथी में ये रोमक कन्याएँ सौदा-

बेच रही हैं, वहाँ ग्राहक आधी रात तक डटे रहते हैं, और यहाँ के नागरिक महाजनों की दूकानों पर लोग जाते भी नहीं! वे लोग भी अब वहाँ से उन्हीं कन्याओं को मँगा कर अपनी दूकानों पर बैठा रहे हैं। वेतन के साथ समूचे लाभ में इन किशोरियों को पत्ती भी दे रहे हैं।

करिकाल—यह तो देख रहा हूँ मैं कावेरी! रोम का भाग्य-सूर्य इस समय मध्य आकाश में है, सब से ऊँचे बिन्दु पर। जहाँ रोम की सेनाएँ अभी नहीं पहुँचीं वहाँ उनकी कन्याएँ पहुँच गयीं। इनके कारण तरुणों में यहाँ विकार बढ़ रहा है, यह सच है। यह नहीं सोच पाते कि उन किशोरियों से जो सन्तान जन्म लेगी वह दूसरी या तीसरी पीढ़ी में ही साँवली हो जायगी। लड़ने चले हैं ये अपने सूर्य से!

कावेरी—[मन्द हँसी] अपने सूर्य-देव से?

करिकाल—हाँ री! हमारा रंग तो वही है जो हमारे सूर्य से मिला है। प्रकृति के सत्य को कावेरीपत्तनम् के तरुण भूल रहे हैं। पर जब तक मेरे सिर पर यह मुकुट है और हाथ में यह दंड, यह न होगा; हो नहीं सकेगा!

कावेरी—कामदेव भी मानेगा आपके नियम को? [मन्द हँसी]

करिकाल—चुप! तू निकट रहने से प्रगल्भ हो रही है! पहले विवाह नहीं था। विवाह की प्रथा जब कभी चली होगी, कामदेव को नियम में बाँधने के लिए ही। टाइटस आ रहे हैं। नीचे धरती की ओर देखती खड़ी रहो।

[टाइटस का प्रवेश]

टाइटस—जय हो महाराज !

करिकाल—बैठो भद्र ! यहाँ सामने के भद्र-पीठ पर !

टाइटस—आज का दिन भी निकल गया। मन्त्री कहते हैं, अभी भेद नहीं खुला। जी न सकूँगी। उसके बिना मैं...[कण्ठ भर आता है।]

करिकाल—धीरज धरो श्रेष्ठी। तुम्हारी एक-मात्र कन्या है वह, पिता के अनुराग का अनुमान कर रहा हूँ मैं। इस विषय की कुछ बातें पूछनी हैं...

टाइटस—जी...

करिकाल—उसकी ठीक अवस्था कितनी थी ?

टाइटस—सत्रह वर्ष, पाँच महीने।

करिकाल—और वह अभी तक कुमारी थी ?

टाइटस—कोई नयी बात नहीं है। हमारे यहाँ कन्याएँ बीस वर्ष तक कुमारी रहती हैं। कुछ इसके ऊपर भी चली जाती हैं।

करिकाल—अर्थात् बीस वर्ष की युवती को भी आप कन्या कहते हैं ? चौदह-पन्द्रह तक जिसका विवाह हो गया होता, वह तीन बच्चों की माँ बनी होती। उसे भी आप कन्या कहते हैं ?

टाइटस—देश-देश के चलन की बात है यह।

करिकाल—जी नहीं, सारे संसार को जीत लेने की धुन में आपके यहाँ प्रकृति का धर्म तोड़ा जा रहा है। जीवन की पूर्णता प्रकृति के धर्म को समय पर स्वीकार कर लेने में है। अपनी कन्या के पति के साथ आप पोत पर चढ़े होते तो यह संकट नहीं आता।

टाइटस—रोम का पात्रीशियन हूँ मैं, सिनेट का प्रभावशाली सदस्य, जिसके रथ के नीचे बड़े से बड़े साम्राज्य पिस गये हैं।

आपने कल वचन दिया था, इस संध्या तक, कम से कम इस जल-दस्युता का भेद खोल देने का, मेरी कन्या के उद्धार का।

करिकाल—किसी भी साम्राज्य या व्यक्ति की मर्यादा से बड़ी प्रकृति की मर्यादा होती है श्रेष्ठी ! कालमणि जैसे भयानक जल-दस्यु का वध मैंने इसी हाथ से किया था। समुद्र को निर्भय बनाना था मुझे, इसीलिए इस कावेरीपत्तनम् का निर्माण हुआ। रक्षा का विश्वास दिला कर देश-विदेश के महाजनों को मैंने यहाँ आदर से बसाया, और अब देखता हूँ तुम्हारी इस कन्या के अपहरण में मेरे सारे किये-कराये पर पानी फिर गया।

टाइटस—इस घटना की सूचना बिजली के वेग से संसार भर के समुद्री नगरों में पहुँच जायगी। यह जब रोम में पहुँचेगी, तब क्या होगा ?

करिकाल—अपने कर्तव्य में मैं शिथिल नहीं हूँ तो फिर मुझे रोम की शक्ति की चिन्ता नहीं है। घटना तो यह घटी है मेरी सीमा के समुद्र में, पर इसका सूत्र तुम्हारे रोम के किसी भवन में है।

टाइटस—[उद्वेग में] क्या कहते हैं आप ?

करिकाल—उत्तेजना से लाभ नहीं होगा श्रेष्ठी ! शान्त और दृढ़ चित्त से हम दोनों को सोचना है इस विषय पर। यह सम्भव कैसे हुआ ? किस परिस्थिति में ऐसी घटनाएँ हो सकती हैं ?

टाइटस—श्रीमान् ने जो वचन दिया था...

करिकाल—धरती और आकाश चीर कर इस रहस्य का पता लगा लूँगा मैं, इस विश्वास पर मैंने वचन दिया था। मैंने पता भी लगा लिया होता यदि इस साहस का केन्द्र रोम न होता।

टाइटस—किस आधार पर श्रीमान् यह कह रहे हैं !

करिकाल—इस घटना के मूल में यदि यहाँ के लोग होते तो आपके 'सिन्धु-सिंह' का सोना और उसके मदिरा-भाण्ड भी उठा लिये गये होते। अकेली आपकी कन्या उतार ली गयी। उसी के रंग-रूप की, उसी की अवस्था की, उसकी सखियों को दस्यु नहीं ले गये, जिनकी संख्या कितनी थी ?

टाइटस—तैंतीस !...

करिकाल—एक रंग-रूप की तैंतीस किशोरियों में आपकी कन्या का पहचानने वाला कौन था ? मुझे सन्देह नहीं है, वह भी रोम का कोई पात्रीशियन है। आपको अपमानित करने की भावना से, या आपकी कन्या के अनुराग में उसने यह कार्य किया है। किसी को अपनी कन्या का वचन दे कर आपने तोड़ा तो नहीं ?

टाइटस—सोफिया के जगमगाते स्वर्ण-मुकुट में मोतियों की लड़ियों के बीच चार हीरक चारों ओर लगे थे, उसके कुंडलों में इन्द्रनील, उसके उपानह में भी मोती की दो लड़ें थीं। नक्षत्रों के बीच वह चन्द्रमा सी...कोई भी पहचान जाता कि साथ की सभी कन्याओं में उसका पद क्या था।

टाइटस—श्रेष्ठी टाइटस की कन्या का प्रेमी उसे पहचान लेता इस रूप में, पर साधारण जल-दस्यु जब उसका मुकुट उतार लेता, इंद्रनील के कुण्डल खींच लेता, अन्य किशोरियों सी वह भी रोम की एक किशोरी बन जाती। एक पहर तक रात रहते समुद्र की लहरों से लड़ते-भिड़ते जो दस्यु उस जल-पोत पर चढ़े, धुँधले प्रकाश में जिन हाथों ने सोफी को नीचे उतार लिया, वे श्रेष्ठी टाइटस की

कन्या के लिए चढ़े थे, किसी दूसरी किशोरी के लिए नहीं, न स्वर्ण और मदिरा के लिए। इस अपराध का भेद पाना तब तक कठिन है, जब तक हम यह न जान लें कि इस काण्ड में रोम के किसी पात्रीशियन का हाथ है या नहीं, अथवा यहाँ उसका कोई सहायक है या नहीं।

टाइटस—दण्ड-नायक को आज्ञा हो, केटर के भवन की खोज करें।

करिकाल—श्रेष्ठी केटर, जिसका 'जल-गरुड़' रात रहते ही किनारे लगा था···राजनीति में वह तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी है क्या ?

टाइटस—उसके चचेरे भाई कैसका ने सोफिया से विवाह का प्रस्ताव किया था।

करिकाल—और तुमने अस्वीकार कर दिया ?

टाइटस—हाँ, उसका रक्त शुद्ध नहीं है। धन और सहायकों के बल से वह पात्रीशियन बन गया है, पर सभी जानते हैं कि वह मिस्र के एक बली दास का लड़का है, जिसे उसके बाप ने अपना सारथी बना लिया था। बूढ़ा मदिरा में अचेत रहने लगा। तीन साल वह पलंग से उठ भी नहीं सका। इसी बीच में कैसका पैदा हुआ था।

करिकाल—तब केटर के भवन का अन्वेषण किया जाय। उसमें कहीं कोई गुप्त गृह है···धरती के भीतर या दीवारों में ?

टाइटस—यह मैं नहीं जानता।

करिकाल—तुम्हारे भवन में यहाँ कोई गुप्त गृह है ? सुना गया है, रोम के श्रेष्ठी अपने भवनों में गुप्त गृह वहाँ भी बनवाते हैं, और यहाँ भी गुप्त गृह हैं उनके घरों में।

टाइटस—मदिरा रखने की थोड़ी जगह किसी-किसी ने निकाल ली है, बस।

करिकाल—रोम-वासियों के कुल कितने घर हैं यहाँ ?

टाइटस—एक सौ तीस श्रेष्ठियों के, और इतने ही उनके दासों के।

करिकाल—केटर के मित्र उनमें कितने हैं ?

टाइटस—इस समय तो आधे से अधिक ...

करिकाल—तब वह किसी भी दूसरे भवन में हो सकती है। आधे से अधिक केटर के मित्र यहाँ हैं, इसी अनुपात में वे रोम में भी होंगे। सिनेट में उनका कंठ अधिक खुलता होगा, और संसार जीतने का बीड़ा इस समय उनके सैनिकों के हाथ में होगा।

टाइटस—तब आप केटर से डर रहे हैं ?

करिकाल—डरता तो मैं यमराज से भी नहीं। रोम की राजनीति का प्रभाव हमारी प्रजा पर न पड़े, हमारे तरुण इन गोरी किशोरियों के मोह में प्रणय और मदिरा को एक न मान लें, इसी का डर है मुझे। क्या यह सच है ?

टाइटस—क्या ?

करिकाल—रोम के जितने नागरिक नित्य के युद्धों में नहीं मरते, उससे अधिक वहाँ किशोरियों के प्रेम में मरते हैं।

टाइटस—द्वन्द्व में जीत कर ही वहाँ रमणी मिलती है।

करिकाल—गुप्त हत्याएँ भी इसीलिए वहाँ होती हैं ?

टाइटस—कहा जा सकता है।

करिकाल—सुरम्य प्रासाद बनाने की कला वहाँ है भद्र ! दूर देशों को जीत कर दास बनाने की कला भी वे लोग जान गये हैं। तुम्हारे देश की मदिरा धरती का अमृत बन रही है। औषधि-विज्ञान भी तुम्हारा बढ़ रहा है। पर इस विष पर अधिकार न करने से तुम लोग अकाल मृत्यु के झूले में झूल रहे हो।

टाइटस—किस विष पर अधिकार न करने से ?

करिकाल—रमणी-विष पर। यौवन का समूचा मद बढ़ने के पहले उनका विवाह क्यों नहीं कर देते ? देखते रहते रूप और यौवन की पहली लौ जब तक उनमें फूटती, तरुणों की आँखों को राह जब तक उनके हृदय को दग्ध करती, तब तक उनका विवाह हो गया होता, तो प्रेम-वासना के अपराध न होते। ऐसे अवाक् होकर न देखो। कन्या के यौवन का पहला चरण भी नहीं छिपता। प्रकृति कह देती है। संकट की उस पहली घंटी के बजने के पहले जो न जागे, कम से कम उसके बज जाने पर तो उसे जागना ही चाहिए।

टाइटस—आप कहते हैं कि सोफिया का विवाह मुझे पहल कर देना चाहिए था ?

करिकाल—दो वर्ष पहले, जब वह पहली घंटी बजी होगी। तो कावेरीपत्तनम् के समुद्र में उसका हरण न होता। मेरी प्रजा के और मेरे भी सिर यह कलंक न लगता। प्रकृति के मार्ग को न मानने वाले बराबर उससे हारे हैं। विवेक यही कहता है...प्रकृति से सचेत रहो। अकेले केटर के भवन का नहीं, सभी पात्रीशियन घरों का अन्वेषण करना पड़ेगा। और तुम लोगों की

पण्य-वीथी में तरुणी कुमारियाँ पण्य-सामग्री और मदिरा के मोल-भाव के साथ-साथ रूप का मोल-भाव अब न कर सकेंगी।

टाइटस—हमारे व्यापार पर भी प्रतिबन्ध लगेगा अब ?

करिकाल—रूप के व्यापार पर । यहाँ के साँवले तरुण तुम्हारे देश की किशोरियों के रूप पर पागल हो रहे हैं। असाध्य होने के पहल इस रोग का उपचार करना है। तुम्हारी कन्या के अपहरण ने अग्नि में घी का काम किया है । समझ रहे हो श्रेष्ठी ? व्यापार की स्वतंत्रता का अर्थ आचरण की स्वतंत्रता नहीं है । अब तुम जाओ । कावेरीपत्तनम् से जाने वाले सभी जल-पोतों का और आने वालों का भी अन्वेषण होगा । घोषणा की जायगी कि नगर की किसी पण्य-वीथी में पन्द्रह वर्ष से ऊपर की कुमारी का सामग्री बेचना और उससे सामग्री मोल लेना अपराध माना जाएगा। तुम्हारी कन्या के साथ जो तैंतीस और कुमारियाँ आयी थीं, उनमें से तेईस को तुमने इस नगर के देशी वणिकों को इसी कार्य के लिए सोने के मूल्य बेच दिया है कि उनकी पण्य-वीथियों में भी रूप का आकर्षण चलेगा।

टाइटस—जिनकी इच्छा से वे यहाँ लायी गयीं, उनको…

करिकाल—उनके रूप और रंग की आड़ में, जिन्हें पण्य-वस्तुओं का अधिक मोल लेना था नागरिकों से, जिन्हें तरुणों को रोगी और उन्मत्त बनाना था। रमणी के रूप का फल है यहाँ माता का पद, और पुरुष का बल लोक-रक्षा के निमित्त है। कोई दूसरी परिभाषा नहीं जानते हम इन गुणों की। अब तुम जाओ। यह समय मेरे

उपवन-विहार का है । भगवान् सूर्य पश्चिम के समुद्र में उतर रहे हैं । संध्या को सूचना अब वैतालिक देंगे ।

टाइटस—सेवा में कब आऊँ मैं अब ?

करिकाल—जब मैं बुलाऊँ ।

[टाइटस का निराशा और क्रोध में प्रस्थान]

कावेरी—जी, कोई सेवा...

करिकाल—कुमार के भवन के ग्रीष्म-कक्ष में घुसते जिस कन्या को तुमने देखा था, वह सोफिया थी ? सोच समझ कर कहो ।

कावेरी—श्रेष्ठी टाइटस का वर्णन उससे मिल जाता है ।

करिकाल—कुमार इस समय कहाँ हैं ? इस समय भी तो वह उनके साथ नहीं हैं ? पता दो कावेरी, मुझे इन बातों का और महादेवी से प्रसाद के लिए कहो ।

[कावेरी का प्रस्थान]

करिकाल—विदेशी रूप का मद जब कुमार पर चढ़ रहा है, अन्य नागरिक बचेंगे उससे ? आओ महादेवी ! यहाँ मेरे बायें; यह आसन आधा मेरा है, आधा तुम्हारा ।

महादेवी—देव ! टेढ़ी भवें, तनी बरौनियाँ, साँस में वेग, किस पर यमराज कुपित हैं आज ?

करिकाल—बैठ कर सहारा दो मुझे । इस संकट में अकेली तुम्हीं मुझे पार कर सकोगी देवी !

महादेवी—बात क्या है ? सुनूँ भी ।

करिकाल—रोम के श्रेष्ठी टाइटस को जिस कन्या का यहाँ

समुद्र में हरण हुआ था, वह तुम्हारी पुत्रवधू बन रही है···चोल युवराज कृष्णकाल की प्रेमिका।

महादेवी—कल रात को कुमार के अन्तःपुर में जिसका नृत्य देखने मैं भी गयी थी, तीन पहर दिन तक जो मेरे साथ रही है वह सोफिया, वह टाइटस की कन्या नहीं, किसी नर्तकी की कन्या है ! कुमार ने बताया था, ऐसा टेढ़ा नाम है, मैं भूल गयी। दो पुत्र-वधुओं में से किसी एक को भी यदि पुत्र हो गया होता तो इसे मैं अपने हाथ से ही कुमार को सौंप देती। कैसी भली कन्या है वह ! हँसती है तो फूल झड़ते हैं, और रोने लगती है तो मोती।

करिकाल—हँसते-रोते देख चुकी हो उसे ?

महादेवी—हास्य और रुदन की मुद्राएँ रात उसके नृत्य में देखी थीं।

करिकाल—कहाँ है वह इस समय ?

महादेवी—कुमार के साथ मयूर-पोत पर जल-विहार को गयी है।

करिकाल—दोनों वधुएँ अपने भाग्य को रो रही हैं, और वह कुमार के साथ जल-विहार कर रही है !

महादेवी—कौन कहता है ? वे दोनों कुमार के दोनों ओर बैठी थीं, कर्ण के समीप। सोफी सामने ताम्बूल-पात्र और सुरा लिये बैठी थी। कुमार ने विशेष आग्रह किया था मुझसे भी। उस पर सोफिया नृत्य करेगी, जब मयूरपंख कावेरी के ऊपर की धार में दो कोस चढ़ जायेगा, जहाँ से दोनों ओर घने वन आरम्भ होते हैं। वहाँ की भी तीन नर्तकियाँ गयी हैं। अलका, वासन्ती और रागिनी, वे भी नाचेंगी। सोफी तीनों को हरा देगी।

करिकाल—तुम्हें भी जाना था तब...वन की वायु और नृत्य की मुद्राओं से तुम्हारे चित्त का भी रंजन होता। कुमार के भाव भी समझ में आते।

महादेवी—सामान्य घरों में रोम की कन्याएँ आ गयीं। राजकुमार की सेवा को सोफी रह जायगी तो क्या बिगड़ेगा? यौवन बाँध कर नहीं रक्खा जाता देव! उसके नृत्य से रोगी चंगा हो जाएगा। कुमार के स्वास्थ्य के लिए उसे साथ रहने देना अच्छा होगा। दो दिन के सम्पर्क में ही कुमार उसमें अनुरक्त हो गये हैं, यह भी जान लें आप।

करिकाल—इसे चलने देना अपने हाथ वंश की जड़ काटना होगा। उसमें एक बार रम कर कुमार अपनी दोनों देवियों का अनादर करेंगे और हम दोनों यह लोक छोड़ेंगे बिना पौत्र का मुँह देखे। मान लो सोफी को कुमार से पुत्र हो भी जाए तो भी कुल-देव, पितृ-पूजा का अधिकार उसे न होगा। इस यवन-कन्या के प्रति कुमार का अनुराग अपने देश, धर्म और जाति के साथ द्रोह है देवी!

महादेवी—जानती हूँ। इसी से कहा था, एक पुत्र भी होता तो मैं उसे अपने हाथों कुमार को सौंप देती।

करिकाल—हूँ! और ऐसा करके मेरे यश में कलंक लगातीं। रोम में यह कहा जाता कि टाइटस की कन्या का हरण करके मैंने उसे अपने पुत्र को दे दिया। समूचे जगत् में यह बात फैल कर मेरी नीति की ज्वाला बन जाती।

मंत्री—[प्रवेश कर] देव और महादेवी की जय हो ! युवराज के मयूर-पंख पर टाइटस की कन्या सोफी को दंडनायक ने देखा है। अब क्या होगा देव ? केटर और उसके मित्र तीन रोमक तरुण भी उसी पर हैं।

महादेवी—उनके आ जाने से मैं उस पर न जा सकी। संकोच हुआ मुझे उनके साथ बैठने में। आप ऐसे डरे क्यों हैं मंत्री जी ?

मंत्री—केटर कहेगा, कुमार ने स्वयं सोफी का हरण किया। यह बात अब छिप नहीं सकेगी।

करिकाल—हा...हा...हा...हा ! कुमार ने सोफी का हरण किया ! केटर ने सोफी का हरण किया और उसे रोम की किसी नर्तकी की कन्या बता कर कुमार को उपहार में दे दिया, क्या यह नहीं कहा जा सकेगा ?

मंत्री—यह नहीं स्वीकार करेगा वह।

करिकाल—चलो, मैं अभी स्वीकार कराता हूँ। तुम भी चलो देवी। मेरे साथ तुम्हें कहीं भी संकोच नहीं होना चाहिए। टाइटस को साथ ले लो मंत्री, और दंडनायक को भी कुल पाँच सैनिकों और धनुष-मल्ल के साथ।

मंत्री—जो आज्ञा देव। [प्रस्थान]

करिकाल—सोफी से कुमार का अनुराग हटाना होगा देवी ! समझ रही हो, नहीं तो उस लोक में किसका जल मिलेगा हमें ?

—: :o: :—

दूसरा दृश्य

[कावेरी की लहरों पर 'मयूर-पंख' के डाँड चल रहे हैं। सोफिया के नृत्य में पैर से घुँघरू बज रहे हैं। हँसी और आनंद से वायु-मण्डल गूँज रहा है। पोत पर कई रंगों के आतरण बिछे हैं! कर्ण के समीप युवराज बैठे हैं। आगे सोफी नाच रही है, युवराज के दोनों ओर उनकी दो स्त्रियाँ, दोनों किनारों पर तीन रोमक और तीन देशी तरुण बैठे हैं। तीन नर्तकियाँ राज-कुमार के सामने दूसरी ओर बैठी हैं।]

कुमार—अहा ! अहा ! सोफी उर्वशी का अवतार है ! उर्वशी के नृत्य में देव-सभा जैसे मोह जाता था, वही मोह सोफी के नृत्य में है ! [नृत्य रुकता है] और सरक आओ...हाँ, ठीक; तुम्हारे कण्ठ, कपोल, नासा और ललाट के मोती बटोर लूँ मैं। समुद्र के मोती इन मोतियों की तुलना में टिक सकेंगे केटर ?

केटर—कभी नहीं युवराज ! कला और अनुराग के मोती हैं ये, जिनके भीतर से आपका प्राण झाँक रहा है।

सोफी—चुप नहीं रहोगे तुम ! हूँ, चलो हटो !

कुमार—केवल मेरा या तुम्हारा भी केटर ?...

[सम्मिलित हँसी]

केटर—जो रत्न आपको उपहार में दे दिया, उसकी ओर अब मुझे नहीं देखना है। दान फिर लौटाया नहीं जाता।

कुमार—चाहो तो लौटा लो। तुम्हारी आँखों में लोभ का जल आ गया है। [सम्मिलित हँसी] कामना के पंख समेटे नहीं

जाते। तुम्हारी पुतलियों में सोफी अभी भी नाच रही है....जिस रत्न का दान तुमने मुझे किया था, वह अब तुम्हें मैं दे रहा हूँ। हाथ इधर बढ़ाओ सोफी, और तुम भी केटर।

सोफी—[सिसक कर] कुमार, मुझे कहीं वन में उतार दें... यदि तीन हाथ धरती और दो वस्त्र मुझे न दे सकें! केटर के साथ मुझे नहीं रहना है, और न अब लौट कर रोम जाना है। आप के चरणों की छाया छोड़ कर अब मेरी दूसरी गति नहीं है। तीन वर्ष पहले, जब मैं इसी कावेरीपत्तन में इन्हीं देवी अलका से नृत्य सीख रही थी...यही मयूरपंख है, दोनों किनारों के यही वन और पर्वत हैं...कावेरी के इसी अञ्चल में, शरद् पूनो को आधी रात को जब इन्द्रोत्सव हुआ था, आपके सामने मेरा पहला नृत्य हुआ था...आप भूल गये?

अलका—[विस्मय से] सोफी! तुम टाइटस की कन्या हो, जिसका हरण परसों रात उनके पोत से किया गया था! अब पहचाना! पहले भी 'सन्देह हो रहा था कि भाव और मुद्रा-नृत्य की कला रोम में कैसे पहुँची। तुम मेरी अपनी सोफी हो। आओ बेटी! बैठो यहाँ मेरी गोद में, जैसे तब बैठती थी। हाँ, है तो बालों में वही गन्ध चन्दन की। ओठ भी वही हैं, और दाँत भी वही। मुझी से गुण लेकर मुझे हरा दिया आज!

सोफी—कुछ न पूछो माँ! मैं डूब रही हूँ! 'मयूरपंख' डूब रहा है! कावेरी पाताल में जा रही है! कुमार जहाँ आज बैठे हैं वहीं उस रात भी बैठे थे। उनके आगे थकान से मैं लेट

गयी थी। दुलार से मेरा सिर सहलाने लगे थे वे। कब नींद आयी, नहीं जानती। भोर की लाली में जब पलकें खुलीं, मेरा सिर उनकी जाँघ पर था।

कुमार—सोफी...!

सोफी—आप नहीं समझेंगे कुमार!

कुमार—तब तुम निरी बच्ची थी...

सोफी—हाथी-दाँत की यह कंघी मेरे जूड़े में उसी रात लगी थी। किसने लगायी थी कुमार?

कुमार—अपनी इस कंघी को तुम्हारे जूड़े में यों ही लगा दिया मैंने सोफी। कौतुक या विनोद में, तुम्हारे उस नृत्य का आनन्द कुछ ऐसा छा गया था मुझ पर जैसे...

सोफी—जिसे आप कह नहीं पाते, अब भी नहीं! पुरुष कब क्या करता है, जो कहीं वह जानता, तो मुझ जैसी अभागिन...

[सिसकने लगती है।]

अलका—युवराज!

कुमार—इस विषय में तात से कहना होगा अलका! उनके नियम तुम जानती हो।

अलका—उसी एक रात में सोफी का सारा जीवन डूब गया है, यह न भूलें।

सोफी—किसी का कौतुक किसी के प्राण की फाँस बन गया। रोम के कितने तरुण आये, किसी का नाम भी नहीं पूछा मैंने। कंघी के दाँत दिन बीतने के साथ हृदय में और गहरे गड़ते गये। रोम के तरुण, जो रमणी को राजनीति और प्रतिहिंसा के पासे

पर रख देते हैं, कहने लगे, इस कंघी में कोई रहस्य है, कोई देव है इसके भीतर, जिसके वश में मैं पड़ गयी हूँ। जब तक वह कंघी रहेगी, मुझे प्रेम का सुख न मिलेगा।

कुमार—ऐसी बात होती तो तुम अपने आप मेरे पास आयी होतीं, या किसी पोत से कोई सन्देश-पत्र तुम मुझे भेजती।

सोफी—आयी मैं अपने आप ही। सन्देश-पत्र वह भेजे जो अपने वश में हो, पर जिस पर वशीकरण हो गया हो, वह क्या सन्देश देगी?

कुमार—केटर की कृपा से तुम मेरे पास आ सकी हो।

सोफी—झूठ है यह! श्रेष्ठी केटर ने आधी रात के बाद 'सिन्धु-सिंह' पर धावा किसलिए किया, आप नहीं जानते। पिता के सैनिक इतनी मदिरा पी गये कि केटर के कुल बीस दस्यु चालीस सैनिकों को मार कर मुझे उनके सामने से उठा लाये। भय और लोभ से जब केटर का काम नहीं चला, तो अपनी रक्षा के लिए इन्होंने मुझे आप के पास पहुँचा दिया। सोज़र के कुल की कन्या को रोम की नर्तकी थीब्रिया की बेटी कहा इन्होंने!

कुमार—केटर! क्या बात है? रोम की राजनीति के फल यहाँ उतने मीठे न होंगे!

केटर—मेरे चचेरे भाई कैसका को अपनी कन्या की बात देकर भी श्रेष्ठी टाइटस हट गये, वचन तोड़ने का अभियोग सिनेट में उन पर आने वाला था कि चोरी से अपनी कन्या को लेकर पोत पर चल पड़े। रोम के कुलीन यह आचरण न सह सके और तब...

सोफी—तब क्या श्रेष्ठी केटर?

केटर—तुम्हारे पिता के चलने के ग्यारह दिन बाद मेरा 'जल-गरुड़' चला था। शूर्पारक में 'सिन्धु-सिंह' से हमारी भेंट हुई। वहाँ अपने तीन नाविकों को मैंने तट पर उतार दिया। मदिरा में मिलाने का गन्धचूर्ण उनके साथ था। अपमान का घूँट रोमक नहीं पीता कुमार! जब पी लेता है, पचा नहीं पाता। उसका उपचार उसके पास है ही नहीं। उसके लिए तब केवल दो मार्ग बच जाते हैं...मारने या मर जाने के। मेरे नाविक कौशल से टाइटस के विश्वासपात्र बन गये। उनके हाथ की मदिरा वह पीने लगा जिसमें वे थोड़ा-सा गन्धचूर्ण डाल देते थे।

सोफी—वही चूर्ण डाल कर सैनिकों को मदिरा पिलायी गयी थी केटर?

केटर—हाँ सोफी। राजकुमार पर तुम पिछले तीन वर्षों से अनुरक्त हो, इसका पता जो मुझे होता तो तुम्हें इनके पास नहीं ले आता। पर कोई बात नहीं, इसका न्याय लौटने पर रोम में होगा। टाइटस ने कन्या देने का वचन तोड़ा और मेरे रक्त में दोष दिखाया, मैंने उसकी कन्या का हरण खुले समुद्र में किया, किसी राज्य की सीमा में नहीं। हम दोनों का निर्णय वहीं होगा।

राजकुमार—सोफी का हरण चोल-समुद्र के भीतर कावेरीपत्तन से तीन योजन के भीतर हुआ है, और युवराज कृष्णकाल को धोखे में डालने के लिए श्रेष्ठी टाइटस की कन्या नर्तकी की कन्या बतायी गयी है।

केटर—तट से आगे तीसरे दीपगृह का प्रकाश समुद्र में आगे जहाँ तक जा सकता है, वहीं तक आपकी सीमा है युवराज! उस

दीपगृह के प्रहरी दल को 'सिन्धु-सिंह' पर आक्रमण क कोई सूचना नहीं है। यह घटना समुद्र में आपकी सीमा से दो योजन आगे हुई थी। जहाँ तक सोफी की बात है, इसने स्वयं प्रस्ताव किया मुझसे कि जब तक इसके हरण की घात पुरानी न पड़ जाए, इसे मैं आप सेवा में नर्तकी की कन्या बना कर रखूँ। झूठ तो नहीं कह रहा हूँ, सोफी !

सोफी—नहीं श्रेष्ठो, सच कह रहे हो तुम।

कुमार—तुमने प्रेरित किया उन्हें झूठ बोलने को सोफी ? अमृत के कलश में विष का घूँट !...

सोफी—जी, सौ घूँट अमृत के...उसमें यह एक विष का। क्या श्रेष्ठी केटर आप के दर्शन का लाभ मुझे लेने देते, यदि इनकी कटु-बुद्धि पर नारी-सुलभ अमृत का प्रयोग मैं न करती ? दो घड़ी रात रहते यहाँ अपने भवन के गुप्तगृह में ये मुझे ले गये। बाहर की कोई ध्वनि वहाँ मिलती ही नहीं थी। पशु और पक्षी की भी नहीं। ऊपर का आकाश खुला था, और सब ओर सन्नाटा...एक चील ऊपर उड़ कर निकल गयी। मनुष्य के आने के पूर्व पृथ्वी ऐसी ही होगी !

अलका—ऊपर आकाश खुला था, फिर भी कोई ध्वनि नहीं मिलती थी सोफी ?

सोफी—हाँ, माँ। कहीं कोई ध्वनि नहीं। सारी धरती जैसे मर गयी थी। मैं समझ नहीं सकी, केटर कहाँ से कहाँ आ गये। रोम में कोई सुन्दरी नहीं जो मेरी तुलना में खड़ी की जा सके,

रोम के तरुण नींद में केवल मेरा स्वप्न देखते हैं। कैसका जो मुझे न रुचे तो मैं इनके धन और हृदय की स्वामिनी बनूँ...क्या-क्या कहते गये थे, इनकी बात न मानने पर उसी गुप्तगृह की धरती में सदा के लिए मुझे सो जाना होगा।

कुमार—[क्रोध में] केटर! प्राण का भय देकर सुन्दरी का प्रेम लेते हो!

केटर—तरुणी जितना अधिक डरायी जाती है, उतना ही अधिक वह प्रेम में पिघलती है राजकुमार! रोम में तो ऐसा ही है, यहाँ चाहे जो हो। यहाँ भी यही होगा। यहाँ भी रमणी बलवान् पुरुष की कामना करती है, जिसकी ओर देखने में वह डर से काँप जाए। क्यों अलका देवी, प्रेम में स्त्री की देह काँपने लगती है, भय में भी यही होता है; तब दोनों एक हैं न?

सोफी—श्रेष्ठी केटर! रोम का कोई तरुण मेरी आँखों में इसीलिए नहीं चढ़ा। कोई नहीं खींच सका मुझे अपनी ओर। तीन वर्ष किसी के ध्यान में मैं जागती और सोती रही। किसी ऐसे के ध्यान में जिसकी दया समुद्र से गहरी थी और जिसका विश्वास आकाश से विस्तृत था। सिनेट में तुमसे जूझने को तात भी तैयार थे, उनके मित्र उन्हें बल भी दे रहे थे; पर जब मैंने उनसे आग्रह किया कावेरीपत्तन चलने का तो वे मेरी बात मान गये। अब तुम जान गये कि मैं यहाँ किसलिए आयी। रोम नहीं लौटना है मुझे अब···

केटर—सो तो देख रहा हूँ! रमणी पर दया करने वाला पुरुष क्लीव होता है सोफी, और विश्वास करने वाला मूर्ख!

कुमार—[हाथ पटक कर] केटर ! गहरी पी गये हो तुम ! किसे क्लीव और मूर्ख बना रहे हो ?

केटर—इसकी तरुणाई पर जो दया करे उसको, और जो इसका विश्वास करे उसको ! रोम के कितने तरुणों के हृदय में आग लगाकर यह यहाँ आयी है, आप नहीं जानते। इसकी आँखों में लोहे की लाल शलाका...

कुमार—रोम के वीर का यह आदर्श होगा केटर ! तुम्हारे काव्य में वीरों का आचरण ऐसा होता है ?

सोफी—वे अबला का प्रेम बल से लेते हैं। अस्वीकार करने पर आँखें निकाल लेते हैं, और...और...

[मूर्च्छित होकर गिरती है।]

अलका—सोफी ! सोफी ! क्या हो गया है बेटी ? हाय राम ! यह तो अचेत हो गयी।

कुमार—एँ...सोफी ! सोफी !

केटर—स्वाँग कर रही है कुमार ! रमणी का चरित्र देव भी नहीं जानता। इन दो देवियों के रहते यह आपके हृदय की रानी बन जाना चाहती है। चलिए, इसका सिर जाँघ पर लीजिये और धीरे-धीरे इसके केश सँवारिए !

कुमार—इस उद्धत को बन्दी करो ! बाँध लो इसे !

[मन्त्री, करिकाल, टाइटस, महादेवी और दण्डनायक का दूसरे पोत पर प्रवेश।]

करिकाल—दण्डनायक ! बाँध लो केटर को !

केटर—रोम का स्वतन्त्र नागरिक हूँ मैं महाराज ! याद रहे !

करिकाल—हाँ जी, तुम रोम के स्वतन्त्र नागरिक कावेरीपत्तन के समुद्र में जल-दस्यु बनते हो ! रोम के स्वतन्त्र नागरिक का अच्छा आचरण है यह !

केटर—दूर रहो ! जब तक मेरे हाथ में खड्ग है...

मन्त्री—छीन लो इसका खड्ग दण्ड-नायक !

केटर—[जल में कूद कर] आए अब जिसे अपना प्राण भारी हो !

कुमार—दण्ड-नायक, मुझे कूदने दो। यह उद्धत...

केटर—हाँ...कुमार । आप चले आइये ! सोफी के संग में आँखों को रँग लीजियेगा। इस गहरी साँवली कावेरी में कुछ सूझेगा नहीं, जैसे साँवली रमणियों का रंग उसके रंग के आगे आपकी आँखों में नहीं सूझता ।

कुमार—अकेले मैं, दण्डनायक, दूसरा कोई नहीं...[हाथ उठाकर रोकने की चेष्टा]

केटर—रोम के वीर का आदर्श देखना हो कुमार, तो चले आओ । तीन वर्ष पहले इसी 'मयूरपंख' पर सोफी के नृत्य का रस तुमने यहीं लिया था, तुम्हारी जाँघ पर सिर रखकर वह यहीं सोयी थी, अपने सिर की कंघी तुमने उसके जूड़े में यहीं लगा दी थी, यहीं तुमने उस पर मोहन और वशीकरण किया था। तुम्हारे लिए कुमार ! अकेले तुम्हारे लिए रोम की इस अनुपम सुन्दरी ने वहाँ के कितने तरुणों को निराश किया, अपने पिता के साथ धोखा किया, मेरे गुप्तकक्ष में मुझे भी छल कर मेरे ही साथ तुम्हारे पास

चली आयी। रोम के समूचे तरुणों के नाम पर, सीजर और आगस्टस की प्रतिष्ठा के नाम पर तुम्हें द्वन्द्व का निमन्त्रण देता हूँ। यहीं, इसी जल में जहाँ तुमने रूप की रानी सोफिया का हृदय जीता था...

करिकाल—हाँ...हाँ...ठहरो कुमार ! यह सब क्या सुन रहा हूँ मैं ! कब जीता था तुमने टाइटस की कन्या का हृदय ?

अलका—सोफी···सोफी...

सोफी—कु...मा...र...कहाँ...कहाँ...

टाइटस—सोफी ! सोफी ! तो यह मूर्छित है अलका देवी !

अलका—अब आ रही है चेत में...

करिकाल—तुमसे पूछ रहा हूँ कुमार ! मैं इस देवभूमि की प्रतिष्ठा में...जहाँ का एक-एक निवासी देवता है...चोल राजवंश की प्रतिष्ठा यह यवन नहीं जानता, तुम जानते हो।

कुमार—अपनी शिष्या के प्रति मेरे आचरण की बात तुम कहो अलका देवी ! महाराज से, महादेवी से, मन्त्री और श्रेष्ठी टाइटस से। तब तक इस देवभूमि की प्रतिष्ठा में, अपने पूर्व पुरुषों की प्रतिष्ठा में, मैं इस उद्धत यवन का निराकरण करूँ।

[पानी में कूदने की ध्वनि। पल भर सन्नाटा]

महादेवी—कुमार के हाथ में कुछ नहीं है देव ! वह खड्ग लिये है ! हाय-हाय ! चलाया खड्ग उसने !

करिकाल—हा...हा...हा ! अपने पुण्य और पुत्र के पौरुष पर विश्वास करो देवी ! कुमार को शस्त्र लेकर जाना था।

महादेवी—[भय और दुःख में] शस्त्र दो कुमार को दण्डनायक !

करिकाल—अब यह नहीं हो सकता ! कन्या के प्रति कुमार का आचरण यदि शुद्ध होगा तो वे उसी के खड्ग से उसका वध करेंगे। हाँ, कहो अलका !

अलका—किस हृदय से महाराज ! कुमार का प्राण संकट में है, सोफी अभी भी अचेत है मेरी गोद में। दैव जब वह अवसर देगा, कहूँगी मैं सब। इतना सुन लें इस विषय में, दोनों निर्दोष हैं···कुमार भी और मेरी यह शिष्या भी।

करिकाल—टाइटस की कन्या तुम्हारी शिष्या कब हुई ?

अलका—ग्यारह वर्ष की आयु में श्रेष्ठी टाइटस के साथ यह यहाँ आयी थी। तीन वर्ष तक भरत-नाट्यम् के भाव और मुद्रा, नृत्य और अभिनय यह मुझसे सीखती रही। कावेरीपत्तनम् के निर्माण पर जो इन्द्रोत्सव हुआ था, इसी 'मयूरपंख' पर कावेरी के इसी जल पर इसका नृत्य कुमार की मित्र-मण्डली में हुआ था।

सोफी—[चेत में आकर] कुमार कहाँ हैं माँ ?

अलका—देखो, वहाँ बेटी ! वह जल में !

सोफी—द्वन्द्व...द्वन्द्व हो रहा है यह, निहत्थे कुमार और खड्गधारी केटर में ! सब लोग दर्शक बने हैं ! महादेवी, आप भी देख रही हैं यह ! शस्त्र दीजिये...शस्त्र दीजिये कुमार को ! कोई नहीं सुनता ? तात ! तात !! कुमार के न रहने पर मैं भी न रहूँगी !

टाइटस—महाराज और महादेवी से अधिक प्रेम तुम्हारा नहीं हो सकता कुमार ! पर चुप रहो ! बैठो यहाँ चुपचाप !

सोफी—तब यह मेरा अन्त है ! जा रहा है वह सोने का संसार, जो तीन वर्षों से मेरा था !

अलका—हाँ...हाँ...सोफी ! सोफी !

सोफी—[जल में कूद कर] मृत्यु में भी उन्हीं के साथ...

[मयूर-पङ्ख पर कोलाहल, सिसकी और रुदन की ध्वनि]

करिकाल—पकड़ो दण्डनायक ! सोफी डूब रही है !

टाइटस—डूबने दीजिये ! देखा नहीं आपने ? आपके, महादेवी के और कुमार की इन दोनों देवियों के प्रेम को चुनौती दे कर वह जल में कूदी है ! पल भर की उसकी आकृति से, चेष्टा से, मन और प्राण की गति से यह सिद्ध हो गया कि कुमार के बिना वह जी न सकेगी। कुमार को छोड़ कर अब उसकी कोई दूसरी गति नहीं है। यवन-कन्या के साथ चोल राजकुमार का सम्बन्ध नहीं हो सकता, फिर उसे बचा कर क्या होगा ?

करिकाल—अब तक उसके साथ यदि राजकुमार का आचरण शुद्ध रहा होगा, और यदि इस द्वन्द्व में उसका प्रेम सहायक होगा, तब हो सकेगा।

महादेवी—कावेरी में कमल खिला है आर्यपुत्र ! जल के ऊपर सोफी का मुख खिले कमल-सा प्रसन्न है ! पहुँच गयी वह वहाँ ! हरे ! हरे ! अबला पर प्रहार करेगा केटर ! पापी...!

कुमार—[दूर की ध्वनि] सोफी पर प्रहार करेगा नीच ! अच्छा !

मंत्री—डरें न महादेवी, वह देखिये...कुमार केटर को खींच कर कावेरी के तल में ले गये। कावेरी में अब अकेला कमल खिला है।

कावेरी में कमल की कहानी तब तक चलेगी, जब तक कावेरीपत्तनम् रहेगा।

महादेवी—उससे भी अधिक मन्त्री! जब तक कावेरी में जल रहेगा! हम लोगों के जो भी पुण्य अभी शेष हों, किसी भी जन्म के, इस संकट में सहायक बनें। संकल्प करती हूँ, यहाँ कावेरी के दोनों किनारे मन्दिर बनें...एक शंकर का होगा...दूसरा पार्वती का।

मंत्री—एक की प्रतिष्ठा कुमार के हाथों होगी, दूसरे की सोफी के, यह इतना भी जोड़ दें अपने संकल्प में...

महादेवी—इसका संकल्प महाराज करें। यह इनके अधिकार की बात है।

करिकाल—सोफी के प्रति कुमार का आचरण शुद्ध रहा है अलका? शपथ से कहो!

अलका—शपथ से कह रही हूँ महाराज! अपनी कला की शपथ से। सोफी के प्रति राजकुमार का आचरण बराबर शुद्ध रहा है।

करिकाल—कला की शपथ?

अलका—नर्तकी के धर्म में कौन विश्वास करेगा महाराज? इसलिए कला की शपथ ली है। उसे छोड़ कर कोई दूसरा धर्म मैं नहीं मानती, मेरे इस भोगायतन के सारे भोग भी उसी से मिले हैं।

करिकाल—ठीक है तब! एक मन्दिर की प्रतिष्ठा कुमार के हाथों और दूसरे की सोफी के हाथों होगी। महादेवी के संकल्प में इतना मेरा भी संकल्प है।

टाइटस—[आनन्द में] इसी दिन के लिए सोफी ने किसी रोम के तरुण को अपने समीप नहीं फटकने दिया महाराज ! पिछले दो वर्षों से मैं उसके सम्बन्ध के प्रयत्न में था, पर किसी को भर आँख उसने देखा भी नहीं, और अपने विक्षिप्त हो जाने का भय दिखा कर मुझे यहाँ ले आयी।

करिकाल—अर्थात् कुमार का रहस्य मुझे अज्ञात था, और सोफी का तुम्हें श्रेष्ठी ?

अलका—कुमार का कोई भी रहस्य नहीं था ! नहीं तो फिर मेरी शपथ झूठी है। सिद्ध कर दूँगी मैं यह ! कुमार को कुशल से लौटने दीजिये।

मन्त्री—आपका पुण्य सहायक हुआ महादेवी ! देखिए...वह कुमार उसके केश पकड़ कर इधर खींच रहे हैं, और उसका खड्ग सोफी को दे रहे हैं !

करिकाल—कितने अच्छे ढंग से तैर रही है सोफी, राजहंसिनी-सी !

कुमार—इसे कूप-दण्ड के नीचे बाँध दो दण्डनायक ! अलका देवी ! अपनी इस शिष्या को गर्भगृह में ले जाओ। सूखे वस्त्र और थोड़ा द्रव पिला कर सुला दो इसे। हाँ, अपने आचरण का समाधान अब मैं करूँगा।

टाइटस—इस समय नहीं ! अलका देवी के साथ युवराज भी वहीं गर्भगृह में विश्राम करें। न्याय-निर्णय का स्थान राजसभा है।

महादेवी—ठीक कह रहे हैं श्रेष्ठी। वस्त्र बदल कर तुम भी वहीं विश्राम करो कृष्ण !

कुमार—महाराज और मन्त्री क्या कहते हैं ?

मन्त्री—महाराज की उपस्थिति में मन्त्री का अधिकार कुछ नहीं रहता युवराज !

करिकाल—तुम्हारे आचरण का समाधान हमें अलका से मिलेगा। इस समय विश्राम तुम्हारे लिए भी उपयोगी होगा। क्यों श्रेष्ठी टाइटस ?

टाइटस—हाँ श्रीमान् ! पहले से ही कह रहा हूँ मैं यह !

करिकाल—तुम्हारी कन्या के अपहरण में युवराज का हाथ कितना था, यह भी देखना होगा।

टाइटस—जब तीन वर्ष पहले उसका हृदय चुराया गया, और उस समय अभियोग लेकर मैं आपकी सेवा में नहीं आया तब...

मन्त्री—अब उसकी अवधि बीत गयी है श्रेष्ठी !

टाइटस—[हँसकर] हा...हा...हा ! अवधि बीत गयी है ! वह पुराना अभियोग नये रूप में खड़ा नहीं हो सकेगा ?

कुमार—सोफी के अपहरण की सूचना मुझे तनिक भी नहीं थी। परसों एक पहर दिन चढ़ते जब वैतालिक ने दिन के पहले पहर का घंटा बजाया, केटर उसे लेकर मेरे ग्रीष्म-भवन में गया। रोम की नर्तकी थीब्रिया की पुत्री कहकर कुछ दिन उसका नृत्य और अभिनय देखने को कहा उसने मुझे। अनासक्त वृत्ति में मैंने यह बात मान ली और कल रात के नृत्य में मैंने परिवार की देवियों के साथ बैठकर उसका नृत्य देखा।

टाइटस—तीन वर्ष पहले के इन्द्रोत्सव की कोई बात आपके मन में नहीं थी ?

कुमार—तीन वर्ष पहले की बालिका श्रेष्ठी टाइटस की कन्या थी और यह तरुणी नर्त्तकी थीविया। दोनों एक नहीं थीं मेरे लिए। फिर भी इस विषय में मेरा मौन रहना ही अच्छा है।

करिकोल—हम लोग अपने पोत मे चलें। कल सभा में इस पर विचार-कार्य होगा।

महादेवी—यही हो। हम लोग अपने पोत से चलें।

मन्त्री—दण्डनायक अपने सैनिकों के साथ यहाँ कर्ण और अग्रभाग पर रहे। अन्य सभी जन महारानी के पोत से चलें।

[मयूरपङ्ख से कुछ स्त्री-पुरुषों का उतर कर दूसरे पोत पर जाना]

राजकुमार—अलका देवी...

अलका—आइए युवराज, यह अपनी...देखिए......तब तक थोड़ा विश्राम मैं भी कर लूँ इस दूसरे भाग में। अब मैं यहाँ न रुकूँगी।

[प्रस्थान]

कुमार—तो तुमने मुझे नहीं बताया कि तुम कौन हो ?

सोफी—बताया तो था, नर्त्तकी थीविया की पुत्री सोफी।

कुमार—और यह झूठ नहीं था ?

सोफी—झूठ कहने के दिन भी कुछ होते हैं युवराज !

कुमार—अच्छा...[दोनों की सम्मिलित हँसी]

—०—

तीसरा दृश्य

[राजसभा : दूर पर बन्दी और चारण प्रशस्ति गा रहे हैं। वैतालिक दिन के पहले पहर की सूचना देता है ।]

करिकाल—अलका...

अलका—सच कह रही हूँ देव ! कुमार स्वयं सोफी का हाथ केटर के हाथ में दे रहे थे ।

करिकाल—पर यह असम्भव है। महादेवी उसमें कुमार का अनुराग कल देख चुकी थीं !

महादेवी—हाँ, मुझ पर यही प्रभाव कल रात और आज दिन में पड़ा था ।

अलका—[हँस कर] कैसे महादेवी ?

महादेवी—कल रात नृत्य के अन्त में जब वह त्रिभंग पर खड़ी होकर साँस लेने लगी, कुमार ने अपने उत्तरीय से उसके मुख का पसीना पोंछ कर अपने कण्ठ की एकावली उसके कण्ठ में डाल दी।

अलका—आप कह रही हैं कि माता, दो विवाहिता पत्नियों और अन्तःपुर की देवियों के सामने कुमार ने इस यवन-कन्या में अपनी आसक्ति का परिचय दिया ? सोफी की कला का पुरस्कार था वह महादेवी ! जो कोई भी सहृदय उसे दे सकता था । उसमें आसक्ति नहीं थी, अनुराग भी नहीं था, गुण की स्वीकृति और प्रशंसा के अतिरिक्त उसमें और कुछ नहीं था।

करिकाल—युवराज की मानसिक दशा का चित्र खींच रही हो अलका ?

अलका—हाँ देव ! माता और राजपरिवार का अन्य देवियों

के सामने युवराज अपनी अशक्ति पर अंकुश रखेंगे। जो व्यापार किसी निरे सामान्य से सम्भव नहीं है, वह युवराज करेंगे ?

करिकाल—इस विश्लेषण में मैं तुमसे सहमत हूँ।

अलका—इन्द्रोत्सव की रात को जिस सोफी ने अपने नृत्य से मुग्ध किया था, जो थककर उनके आगे लेट गयी थी, उनके लिए अभी वह अबोध बालिका थी। देखा था मैंने, जब तक वह जागती रही उसके सिर पर उन्हें हाथ फेरते। किसी भी बड़े का छोटे के प्रति दुलार था वह। प्रणय के आकर्षण में भाव और कामना की समता होती है, इसे आप मानेंगे, और यह भी मानिये कि वहाँ कृपा और अनुकम्पा के लिए अवसर नहीं होता।

करिकाल—[आनन्द में] ठीक कह रही हो अलका ! इस विषय में तुम्हारे अनुभव में किसे सन्देह होगा ?

महादेवी—मुझे तो है।

अलका—[हँस कर] आप स्त्री हैं महादेवी ! कोई पुरुष सन्देह करे इसमें, तब मैं अपनी वीणा और चित्र-पिटारी को कावेरी में फेंक कर मुक्ति की साँस लूँ।

करिकाल—कला बन्धन है अलका ! मुक्ति का भाव उसमें नहीं है।

अलका—अनुराग और आग्रह के आधार पर कला का मन्दिर बनता है देव ! तभी तक वह खड़ा रहता है, जब तक उसका यह आधार नहीं हिलता। अनुराग का समूचा आनन्द बन्धन है। मुक्ति उसके सामने जा भी नहीं सकती।

करिकाल—हा...हा...हा ! लाज लगती है मुक्ति को कला के सामने जाने में !

अलका—अनुराग की कावेरी जनके भाग्य में नहीं है वे मुक्ति को मरुभूमि में प्यासे मरते हैं। समय और सीमा के इस जगत् में ज कामनाएँ पूरी नहीं होतीं और एक प्रकार के अभाव का अनुभव हमारे मन में होता है, उसे मिटाने के लिए संगीत, काव्य, चित्र और अभिनय का जन्म हुआ था...शंकर के ताण्डव से हुआ हो, या पार्वती के लास्य से। मैं तो कहूँगी, ताण्डव और लास्य जहाँ मिले थे, वहीं कला का जन्म हुआ।

करिकाल—तब तो अच्छा रहता इन हाथों में राजदण्ड न लेकर मैं वीणा लिये होता!

अलका—आपको इसका अवसर देने के लिए किसी को राजदण्ड लेना पड़ता? आपने स्वयं यह दण्ड लेकर कितनों को इसका अवसर दिया। बुरा क्या हुआ...युवराज और सोफी की बात करते कहाँ बह गयी। हाँ, तो कहाँ तक कहा था?

करिकाल—इन्द्रोत्सव की रात को...

अलका—हाँ...हाँ...जब वह सो गयी, उसका सिर उन्होंने उठा कर अपनी जाँघ पर रख लिया। कमल को बन्द कली पर भँवरा जैसे मँड़राता है, तब तक रस लेने का अवसर भी नहीं रहता। कुमार के इस कार्य में कुछ ऐसो हो बात थी। सिर को कंघी उसके जूड़े में कब लगा दी उन्होंने, यह नहीं देखा मैंने। सोफी चली गयी। कुमार उसे भूल भी गये, पर वह उन्हें न भूल सकी। कुमार ने जिसे बालिका जान कर भुला दिया, उसमें तरुणाई आ गयी थी, उसके लिए यह सब भूल जाना सहज नहीं था। तीन वर्षों की लगन लेकर इस बार जब आयी, बात की बात में वह पासा जीत गयी।

करिकाल—कुमार हार गये अलका !

अलका—तभी सोफी का हाथ वे केटर के हाथ में देने लगे ! इन्द्रोत्सव की रात का उन्हें स्मरण दिला कर मेरी गोद में वह अचेत हो गयी। हम जो चाहते हैं, बराबर वही नहीं होता। वह भी हो जाता है कभी, जो हम नहीं चाहते। सोफी तीन वर्ष मुझसे नृत्य सीखती रही, इन्द्रोत्सव की रात को कुमार के सामने उसका नृत्य क्यों हुआ ? उनके पास थक कर वह लेट क्यों गई ? नींद में उसका सिर अपनी जाँघ पर लेकर सिर की कंघी उसके जूड़े में उन्होंने क्यों लगा दी ? वे उसे भूल गये, वह उन्हें क्यों न भूल सकी ? और तो और, केटर ने उसका अपहरण किया अपने लिए, पर वह भी क्यों उसे युवराज को दे आया ? इन प्रश्नों का उत्तर कहाँ मिलेगा ?

महादेवी—यह सब होनहार की बात है अलका !

अलका—इसकी राह रोक कर हमें खड़ा भी नहीं होना है महादेवी ! इसीलिए तो...

करिकाल—सोफी के प्रति आचरण में कुमार निर्दोष हैं तब ?

अलका—निश्चय ! इन्द्रोत्सव की रात का स्मरण जब सोफी ने दिलाया, उनकी आँखों में अनुराग का समुद्र लहरा उठा, जन्म-जन्मान्तर की स्मृति जाग उठी हो जैसे ! कुमार की ओर देखना भी कठिन हो गया उनकी इस दशा में, और इधर सोफी मेरी गोद में अचेत हो गयी। कुमार की उस मनोदशा का चित्र रात भर जाग कर मैं बनाती रही हूँ, उसमें सब कुछ आ गया है...वह भी जो शब्दों से नहीं कहा जा सकता।

महादेवी—कहाँ है वह चित्र अलका ?

अलका—अभी तो मेरे शयन-कक्ष में है। थोड़ा काम शेष है। आज्ञा हो तो दो घड़ी में पूरा कर लाऊँ ?

करिकाल—जब तक तुम लौटोगी नहीं लेकर, मैं यहीं बैठा रहूँगा।

अलका—[हँस कर] जी...जी...समझ रही हूँ ! स्मरण आते होंगे आपको वे दिन जो इस समय सोफी के हैं।

महादेवी—जिसके दिन अलका ?

अलका—[जाते-जाते] आपके दिन महादेवी ! हो सकता है मेरे भी हों !

महादेवी—क्या कह गयी यह नर्त्तकी ? [**अलका का प्रस्थान।**]

करिकाल—कुछ न कुछ रहस्य सब के होते हैं महादेवी ! महाकाल के मन्दिर में इसका नृत्य देखा था मैंने अवन्ती में। तीन वर्ष पहले सोफी के नृत्य का प्रभाव जो कुमार पर पड़ा, वही प्रभाव मुझ पर अलका के नृत्य का पड़ा था। उस समय यह भी तेरह-चौदह की थी। राजधानी में नया भवन बनवाकर मुझे दूसरी यात्रा इसे ले आने के लिए करनी पड़ी थी। कला की कीर्ति यहाँ इसकी जैसे बढ़ती गयी, यह मुझसे दूर होती गयी।

महादेवी—कितने दिन निकट रही ?

करिकाल—कुल तीन वर्ष।

महादेवी—बस !

करिकाल—तीस वर्ष भी रहती तो मैं इस समय छिपाता नहीं महादेवी ! वे दिन अब लौटेंगे नहीं, तुम भी जानती हो।

मंत्री—[प्रवेश कर] महारानी और महादेवी की जय हो! पण्य-वीथियों में पन्द्रह वर्ष की कुमारी कन्या अब मोल-भाव नहीं करेगी, इसकी घोषणा करा दी गयी।

करिकाल—पर इसका पालन कड़ाई के साथ नहीं होगा।

मंत्री—तब नियम की व्यवस्था कैसे होगी?

करिकाल—प्रकृति के नियम मनुष्य में बनाये नियमों को नहीं टिकने देते मंत्री! यवनों और विदेशियों के साथ व्यवहार में हमें उदार बनना पड़ेगा। जहाँ की भूमि से हमारा सम्पर्क नहीं है, वही हमारे लिए विदेशी हैं। यवन-कुमारियों को महामारी की भाँति हम दूर नहीं रख सकते। उनको दूर रखने को हम जितनी अधिक चेष्टा करेंगे, उनका सम्मोहन हमारे युवकों पर उतना ही अधिक पड़ेगा। अकाल से बचने के लिए नदी का पानी हम रोकते हैं, पर सब नहीं, कुछ न कुछ तो खोलना ही पड़ता है।

मंत्री—इस उदारता का कारण कुमार और सोफी का सम्बन्ध है?

करिकाल—यह भी सही। अलका से अभी-अभी मैंने सब कुछ सुना है। जो कुछ होता गया, सभी संयोग से। कुमार ने अपनी ओर से उसके लिए कोई चेष्टा नहीं की थी। कोई नहीं...कभी नहीं! इन्द्रोत्सव की रात जिसे निरी बालिका जान कर वे भूल गये थे, वह रोम में भी तीन वर्ष उन्हीं के अनुराग में पड़ी रही। यह संयोग नहीं तो और क्या था? क्यों नहीं कोई रोम का तरुण उसके हृदय पर अधिकार कर सका? आकाश के चन्द्रमा पर आँखें लगाये वह बैठी रही। कितने दीप-स्तम्भ उसके चारों ओर थे!

मंत्री—राजा और प्रजा दोनों के नियम एक नहीं होते।

करिकाल—होने चाहिये दोनों के लिए। केवल प्रकृति के नियम हों।

मंत्री—तब महाराज वैराग्य की ओर बढ़ रहे हैं।

करिकाल—[हँस कर] राग के दोनों छोर वैराग्य के बने हैं। पहला जन्म के पहले और दूसरा मृत्यु के...और इन दोनों के बीच में राग की सीमा निश्चित है। केटर का न्याय दोपहर के पहले कर देना है।

मंत्री—दंडनायक को भेजा है बन्दीगृह से उसे लिवा लाने को।

करिकाल—और टाइटस ?

मंत्री—राज-मार्ग पर अपने साथियों के साथ वे खड़े हैं। उसके साथ ही आएँगे। आपकी सीमा के भीतर श्रेष्ठी टाइटस के पोत पर आक्रमण नहीं हुआ था।

करिकाल--ऐं! तब कहाँ हुआ था ?

मंत्री—आपकी सीमा के अन्तिम दीप-स्तम्भ का प्रकाश जहाँ तक पहुँचता था, उससे प्रायः दो योजन की दूरी पर मुक्त समुद्र में यह घटना हुई थी। उस अन्तिम दीप-स्तम्भ के किसी प्रहरी को इस आक्रमण को सूचना नहीं मिली। 'सिन्धु-सिंह' पर संकट के शंख बजे थे, पर एक भी प्रहरी नहीं सुन सका उसे।

करिकाल—सो गये होंगे! उस समय झंझा का वेग भी तो समुद्र में था ?

मंत्री—श्रेष्ठी टाइटस भी अब इस बात को मान गये हैं कि आक्रमण हमारी सीमा के बाहर हुआ था।

करिकाल—ऐसा ! तब केटर पर अभियोग क्या होगा ?

मंत्री—श्रेष्ठी टाइटस की कन्या का परिचय उसने राजकुमार से नर्तकी की कन्या कह कर दिया। युवराज से मिथ्या आचरण का आरोप उस पर सिद्ध हो जाएगा। एक वर्ष के कारावास का दण्ड उसे दिया जा सकेगा, और उसकी समूची चल और अचल संपत्ति उस अवधि तक राज्य के नियन्त्रण में रहेगी ! परिवार के सदस्यों को वृत्ति और दास-दासियों को कार्य देना होगा।

करिकाल—सोफी के साथ उसने कोई दुर्व्यवहार नहीं किया ?

मंत्री—मृत्यु का भय दिया था उसने, पर सोफी के साथ राजकुमार के सम्बन्ध के विचार से इस प्रसंग में उस कुमारी का नाम न लेना ही ठीक होगा।

महदेवी—राजवंश की प्रतिष्ठा का प्रश्न है यह, सोफी से उसने क्या-क्या कहा, यह नहीं खुलना चाहिए।

करिकाल—न्याय में राजवंश की मर्यादा नहीं चलेगी महादेवी ! केटर अपनी रक्षा में जो खोलना चाहेगा, हम उसे रोक नहीं सकेंगे। आ गये सब क्या ?...

मंत्री—हाँ...टाइटस और केटर परस्पर झगड़ रहे हैं।

करिकाल—कह दो, यह रोम की सिनेट नहीं, चोल-नरेश की राजसभा है।

मंत्री—रोक दिया दण्डनायक ने उन दोनों को बोलने से।

[टाइटस, केटर और दण्डनायक का प्रवेश]

करिकाल—बन्धन खोल दो दण्डनायक ! अपराधी शुद्ध चित्त से अपना अपराध स्वीकार करे।

केटर—कोई भी अपराध ऐसा नहीं है, जिसके निर्णय का अधिकार आपको हो! न्याय के हित में निर्णय हो, इसलिए अपने पक्ष की बात कहने का अधिकार तो आप मुझे देंगे!

करिकाल—उसमें तुम सामान्य शिष्टाचार छोड़ कर उद्धत बन जाओ!

केटर—तब भी आपको क्रोध न आए।

टाइटस—तब कहो कि न्याय तुम्हें करना है और अपराधी महाराज हैं! नीति की शिक्षा तुम उन्हें दे रहे हो!

मंत्री—बिना बुलाये तुम न बोलो श्रेष्ठी टाइटस!

टाइटस—क्षमा करें महामान्य!

करिकाल—अपराधी विवेक से कार्य न करे, तो हम विवेक क्यों छोड़ें!

केटर—देखिए महाराज, 'सिन्धु-सिंह' पर आक्रमण मैंने आपकी सीमा के बाहर किया था। प्रमाण से जो यह बात सिद्ध हो तो मैं इस अपराध से मुक्त किया जाऊँ।

करिकाल—आप क्या कहते हैं श्रेष्ठी टाइटस!

टाइटस—प्रमाण सीमा के भीतर भी मिल सकेंगे। झंझा के कारण दीप-स्तम्भ के प्रहरी न सुन सके होंगे, और उनका प्रकाश 'सिन्धु-सिंह' पर न पड़ सका होगा। पर इसमें मेरा आग्रह नहीं। अपराधी की यह बात मान ली जाय।

केटर—[उल्लास से] तब यहाँ मैं निर्दोष हूँ! इसका न्याय रोम में हो जाएगा।

मंत्री—श्रेष्ठी टाइटस की कन्या का परिचय तुमने युवराज को रोम की नर्तकी थीत्रिया की पुत्री कह कर दिया।

केटर—पहले अपराध से मुक्त हूँ महाराज अब ?

करिकाल—हाँ !

केटर—तब इस दूसरे अपराध का साक्षी कौन है ?

करिकाल—कुमार और सोफी !

केटर—वादी स्वयं साक्षी नहीं हो सकते।

करिकाल—वादी के स्थान पर सोफी और साक्षी के स्थान पर कुमार हों, तब ?

केटर—हो नहीं सकता। कुमार और सोफी का सम्बन्ध अब कौन नहीं जानता ? आपके राज्य की सीमा के बाहर यह बात जा चुकी है। कल संध्या को जो पोत यहाँ से खुले वे इस समय आपकी सीमा के बाहर होंगे। उनकी ध्वजा के साथ कुमार के प्रेम की कथा भी उड़ती जा रही होगी। वे दोनों अब एक हो गये हैं, दो नहीं हैं महाराज ! कोई अन्य साक्षी है इसका ?

महादेवी—हाँ है।

मंत्री—[उत्सुक होकर] कौन है महादेवी ?

महादेवी—कल संध्या को 'मयूरपंख' पर जितने नर-नारी बैठे थे, सबके सामने तुमने यह स्वीकार किया केटर ! सोफी के कहने से तुमने कुमार से उसे थीत्रिया की पुत्री कहा। अब बोलो, स्वीकार करते हो कि साक्षी बुलाये जायँ ? अलका अभी आती होगी।

मंत्री—धन्य हैं देवी ! यह अपराधी न्याय की आँख में धूल झोंक चुका था। इतनी बड़ी सूचना मुझे न थी !

महादेवी—मंत्री का काम कभी-कभी मैं भी तो करती हूँ !

मंत्री—कभी-कभी नहीं, बराबर। मन्त्र देने में महादेवी का पद मंत्री के ऊपर शास्त्र भी मानता है !

करिकाल—क्या सोच रहे हो केटर ? बोलो ! कल स्वीकार किया था तुमने...'मयूरपंख' पर श्रेष्ठी टाइटस की कन्या को... नर्तकी थीविया की कन्या कहना कुमार के सामने ?

केटर—[कष्ट से] सोफिया ने मुझे राजकुमार से यही कहने को कहा था।

करिकाल—किसी के कहने से कहा, या अपनी इच्छा से, दोनों बराबर हैं। वह टाइटस की कन्या है, यह तुम जानते थे, और जान बूझ कर वहाँ तुमने उसे नर्तकी की कन्या कहा।

केटर—'मयूरपंख' पर मेरी बुद्धि चरने चली गयी थी ! वहाँ मेरा मुँह बन्द रहता !

करिकाल—तब तुम न्याय का मुँह बन्द कर देते। अब पछता कर क्या करोगे ! इस अपराध का दण्ड बोलो मंत्री !

मंत्री—एक वर्ष का कारावास और इस अवधि में अपराधी की चल और अचल सम्पत्ति पर राज्य का नियन्त्रण। परिवार के सदस्यों को वृत्ति, दास-दासियों को कार्य।

टाइटस—एक निवेदन मेरा भी है।

करिकाल—कहो।

टाइटस—मैं केटर के साथ द्वन्द्व का अधिकार चाहता हूँ। यह सीजर के वंश की मर्यादा का आग्रह है···

करिकाल—यह रोम को राजनीति का प्रधान अंग है, पर हमारा नीति-विवेक इसे बर्बरता कहता है। केवल धर्मयुद्ध में शस्त्र उठाने को आज्ञा यहाँ है। इसका अवसर तुम्हें रोम में मिलेगा श्रेष्ठी, यहाँ नहीं। अपराधी को को ले जाओ दण्डनायक! मंत्री आज्ञापत्र लिख देंगे। मध्याह्न-पूजा का समय हो गया। हम लोग चलें अब महादेवी!

[वैतालिक दोपहर के घण्टे बजाता है—मंत्री, दण्डनायक, टाइटस और केटर का प्रस्थान।]

महादेवी—अलका के आने तक आपने यहीं रहने को कहा था।

करिकाल—दोपहर के विश्राम में चित्र देखना ठीक रहेगा। न्याय-दण्ड के तुरन्त बाद कला-वृत्ति आँखों पर न चढ़ेगी।

महादेवी—तब चलें! [दोनों का प्रस्थान]

अलका—[प्रवेश कर] यहाँ तो कोई नहीं है!

कुमार—[प्रवेश कर] कोई चित्र-फलक है अलका देवी?

अलका—हाँ!

सोफी—[प्रवेश कर] किसका?

अलका—किसी प्रणयी का, जिसे जन्म-जन्मान्तर के प्रणय की स्मृति आ गयी है और वह अपनी उस प्रिया को पहचान जाता है, जिसे वह बहुत पहले भूल गया था।

सोफी—देखें तो!

अलका—कुछ पुरस्कार भी दोगी?

सोफी—एक बार फिर आपकी शिष्या बन कर चित्र-लेखन सीखूँगी।

अलका—तब लो, देख लो !

सोफी—[चित्र देख कर] अरे, यह तो कुमार हैं, और आपकी गोद में यहाँ मैं हूँ। कुमार की मुद्रा में पुरानी स्मृति झाँक रही है ! किसी का अनुराग आँखों में समुद्र-सा उमड़ रहा है !

कुमार—किसका अनुराग ?

सोफी—होगी कोई...

कुमार—अपना मुँह उधर तो कर लीजिए अलका देवी !

अलका—कौन-सा ऐसा कार्य करोगे ?

कुमार—जो कला में वर्जित है।

अलका—तो बता क्यों नहीं देते, इसमें भय क्या है ?

कुमार—कहीं आप उसका भी चित्र न बना दें !

अलका—तो क्या होगा ? मैं नहीं रहूँगी, तुम दोनों भी नहीं रहोगे; मेरा चित्र रह जायगा...आनेवाले प्रणय के पथिकों के मार्ग का संकेत बन कर, जिनका अभी जन्म भी नहीं हुआ है।

कुमार—अच्छी बात है। जान गयीं, किसके अनुराग का समुद्र था वह...!

सोफी—ऊँ...हूँ...अभी कहाँ ?

कुमार—अभी नहीं ?

सोफी—नहीं-नहीं [भाग जाती है।]

अलका—सोफी का यह दिन उन सभी कुमारियों को मिले, जिनके पैर तरुणाई की ओर बढ़ रहे हों। दूसरे रण-लीला में लगे रहें, जब तक यहाँ प्रणय लीला हो।

—: :०: :—

देवगिरि में ग्रहण

पुरुष-पात्र

सिंहरण	देवगिरि के पूर्व सम्राट्
रामदेव	" उत्तर "
विरोचन	कुमार
सोठलदेव	सिंहरण के मन्त्री
हेमाग्नि	रामदेव के मन्त्री
देवदत्त	ब्राह्मण सेनापति
सारंगधर	कर्णाधिप के पुत्र
चन्द्रदेव	भास्कराचार्य के पौत्र
चण्ड	विजया का पुत्र
दूत	सम्राट् का दूत

नारी-पात्र

रुक्मिणी	सिंहरण की सम्राज्ञी
विजया	रुक्मिणी की पोषित धर्मपुत्री

पहला दृश्य

[पृष्ठ भूमि में यज्ञ का वातावरण। वेद-मन्त्रों के शब्द, यज्ञ में आहुति के स्वाहा और शंख की ध्वनि। बीच-बीच में स्त्रियों का मंगल गान और उनकी हँसी।]

दूत—[प्रवेश कर] महामन्त्री की जय हो। महाराज आ रहे हैं। आपको सूचित करने को मैं पहले आ गया।

मन्त्री—जन्म भर तुम ऐसी ही सूचना दो वत्स! धन्य हो तुम। विजय और मंगल के तुम रूप हो।

दूत—कृतार्थ हूँ मैं इस आशीर्वाद से देव! इससे बड़ा पुरस्कार मुझे कुछ और न चाहिये।

मन्त्री—[हँस कर] हा...हा...हा...महारानी को यह सन्देश दो . और तब देखो कितना पुरस्कार मिलता है! ब्राह्मण मन्त्री आशीर्वाद छोड़कर और देगा भी क्या?

दूत—अपने हाथ से यज्ञकुण्ड की थोड़ी भस्म भी दे देते आप...

मन्त्री—वह भी पुरोहित की है...मन्त्री केवल मन्त्र देता है विरोचन! अकेले राजा को। आशीर्वाद ही पाओगे उस मन्त्री से जो जन्म और कर्म दोनों से ब्राह्मण है! इस यज्ञ का भस्म पहले महाराज सिंहरण के मस्तक पर लगेगा फिर तुम सबको मिलेगा... कमर के ऊपर चाहे सारी देह में पोत लो।

विरोचन—अच्छा महाराज प्रणाम। महारानी के पास चलूँ...

मन्त्री—अन्तःपुर में महारानी नहीं हैं...उधर कहाँ चले?...

विरोचन—[उत्सुक होकर] फिर कहाँ हैं ?

मन्त्री—यज्ञ के अन्त का मंगल गान...इसी शिविर में सखियों के साथ गा रही हैं ।

विरोचन—अच्छा यही है...[जाते-जाते]

रुक्मिणी—देख तो विजया, यह कौन चला आ रहा है सिंह की तरह...

विजया—महारानी...वह कुमार विरोचन हैं जो सेना-प्रस्थान के पहले ही मसल नरेश बल्लाल के यहाँ भेजे गये थे दूत बना कर...

रुक्मिणी—इसकी चाल में दर्प और ओज है विजया ! पैर... धरती पर पड़ते ही नहीं । यज्ञ का फल मिल गया । इधर कई दिनों से जो शुभ सपने आ रहे थे...बाईं आँख फड़क रही थी, दुर्ग की ध्वजा बराबर दायें हिलती थी । युद्ध में आर्यपुत्र को विजय मिली है...क्यों है न ?

विजया—आपके पुण्य से विजय न मिलेगी तो होनी का... आपके मत से अग्नि जलती है और सूर्य निकलता है देवी ! दुर्ग की भवानी आप को इष्ट हैं । पिछले पखवारे आप फलाहार पर रही हैं, धरती पर सोती रही हैं...कुश की चटाई पर...

रुक्मिणी—हैं...हैं...अपने कर्म की बड़ाई नहीं करते पगली... क्या कह रही है ! रहना तो चाहिये था मुझे निराहार...फल-मूल खाकर पखवारा काट लेना कौन बड़ी बात है रे ? भवानी की दासी हूँ मैं...उनको इष्ट करने की तपस्या मेरे मान की कहाँ है ?

विरोचन—जय हो महादेवी...

रुक्मिणी—[भरे कंठ से] युद्ध जीत आये विरोचन ?

विरोचन—हाँ महादेवी...आपके पुण्य से...हमारे पहले धक्के में ही बल्लाल की पाँत टूट गई। उसके सात मण्डल हमारे राज्य में आ गये। हर साल वह पूर्व समुद्र के सात भार मोती दिया करेगा।

कई स्त्री-कंठ—धन्य...धन्य...[**व्यंग्य की हँसी**]

रुक्मिणी—आर्यपुत्र ने अपने पितामह की हार का प्रतिकार कर लिया। इस जीत का जितना सुख है मुझे उतना शिलाहार के वीर भोज के जीतने का, मालव, चेदि और गुर्जर राज्यों के जीतने का नहीं है।

विरोचन—उन युद्धों में धन और धरती मिली। इस युद्ध में पितामह भिल्लन देव की हार का प्रतिकार भी हुआ।

रुक्मिणी—उनका मान स्वर्ग में इस विजय से बढ़ गया होगा, और बल्लाल का सिर जो इस धरती पर न झुका...वहाँ झुका होगा।

विजया—युद्ध में बल्लाल खेत रहे।

विरोचन—[हँसकर] हा...हा...हा...यह समझ रही है वही बल्लाल है...

विजया—[विस्मय से] तब क्या...

रुक्मिणी—यह बल्लाल दूसरे हैं....इनके पिता पहले बल्लाल ने मेरे पूर्व पुरुष भिल्लन देव को युद्ध में मार डाला था।

विजया—[साँस रोक कर] महाराज ने इस दूसरे बल्लाल को मार डाला। तब...विरोचन !

विरोचन—वीर अपनी इच्छा से मरते हैं विजया। उन्हें कोई मार नहीं डालता, हार...न मानकर पितामह भिल्लनदेव अन्त तक लड़ते रह गये। सवा सौ घाव लगे थे उन्हें भाले और खड्ग के... देह की अन्तिम साँस के साथ उनके हाथ से तलवार गिरी थी।

विजया—अरे बाप रे! सुन कर रोयें फूट आये...

विरोचन—हाँ...वे शस्त्र रख कर हार मान लेते तो बल्लाल प्रथम भी उन्हें मारते नहीं। इस देश में निरस्त्र शत्रु पर कोई आक्रमण नहीं करता। यह अधर्म है। इस दूसरे बल्लाल ने सन्धि के लिये शस्त्र रख दिया। महाराज तब धर्म के नियम न तोड़ सके और यह दूसरे बल्लाल जीवित हैं।

विजया—इन लोगों को नाम नहीं मिलता कि पहला बल्लाल, दूसरा बल्लाल, तीसरा बल्लाल बनते हैं...किसी का नाम विरोचन रख देते...किसी का पुरोचन...किसी का सुलोचन...[**कई नारी-कण्ठ की सम्मिलित हँसी।**]

विरोचन—देखिये महादेवी! हँसी कर रही है।

रुक्मिणी—तुम क्यों चूकते हो...अभी यह किसी की धनी नहीं है...बना लो इसे अपनी और तब फिर हँसते-हँसाते रहना।

विजया—तब मैं यहाँ से भाग जाऊँगी।

रुक्मिणी—कहाँ? दुर्ग के बाहर बिना मेरी मुद्रा के कैसे निकलेगी?

विजया—चुरा लूँगी।

रुक्मिणी—आती हो यह कला तो कुमार विरोचन का हृदय चुरा ले। अभी कुमारी है तू...और कुमारी के लिए यह कोई अपराध नहीं है।

विजया—फिर मुझे दोष न दीजियेगा।

रुक्मिणी—दोष ! मैं आशीर्वाद दूँगी। पोर-पोर रत्नों के आभूषण दूँगी...कर भी तो यह पहले...

विरोचन—मुझे क्या दे रही हैं...विजय सूचना के लिये...उसे बाद में देंगी...जब वह अपना कार्य कर लेगी...मैं अपना कार्य कर चुका हूँ।

रुक्मिणी—देखो न मैं कैसी भूल गई...पर कोई बात नहीं। विजया इस देवगिरि की रत्न है; कितने राजकुमार तरसेंगे इसके लिये।

विरोचन—बल्लाल के इन सात मंडलों का प्रधान माण्डलिक मुझे बना दिया है देव ने। आप की कृपा से मैं भी अब राजकुमार हूँ। कृष्णा के दक्षिण की भूमि का भोग अब मुझे करना है।

रुक्मिणी—[हर्ष में] तब उर्वशी इन्द्र के यहाँ जा रही है...कोई बात नहीं...उचित पात्र को यह दान दिया है...तब मैंने...विजया !

विजया—[संकोच में] जी, कहें...

रुक्मिणी—अरे हैं...यह तो अभी से लजाने लगी। उठा लाओ नीलम के सम्पुट वाली हीरे की माला और उसी के साथ जो रेशम का थान है...

विजया—सेनापति के लिए जो पहले से...

रुक्मिणी—उनका प्रबन्ध उठकर करूँगी...तब तक वही इन्हें...

[विजया का प्रस्थान]

विरोचन—यादव देव ने भूमि दी और देवी ने...

रुक्मिणी—[हँस कर] हाँ...कहो...

विरोचन—वही बात तो नहीं कही जाती । मेरे भाग्य से अमरावती के देव और धरती के राजकुमार ईर्ष्या करेंगे ! दोनों लाभ मुझे एक ही साथ मिले ।

रुक्मिणी—धरती और रमणी...क्यों...[धीमी हँसी]

विरोचन—[हँस कर] तब क्या...जो सपने में भी सम्भव नहीं था...

रुक्मिणी—नहीं सुना है विरोचन ! कोई नहीं जानता कब मेघ बरसेगा और कब नहीं बरसेगा...स्त्री के चित्त और पुरुष के भाग्य में कब क्या होता है इसे भी कोई नहीं जानता । पर भूलना मत...विजया का पालन इन्हीं हाथों किया है मैंने । तैलंग अधिपति रुद्रदेव को द्वैरथ युद्ध में जिस सिंह-विक्रम नन्दिघोष ने मारा था...और जिसके खड्ग से यादव श्रेष्ठ की कीर्ति आकाश में लिखी गई थी...उसी महावीर की अकेली कन्या है विजया...जिसे मेरी गोद में देकर वे परलोक सिधारे थे ।

विरोचन—पलकों में रखूँगा उसे मैं महादेवी !

रुक्मिणी—हाँ...जिस दिन तुम उसे तिल भर दुःख दोगे, यहाँ मेरा हृदय दुखेगा ।

विरोचन—इसके पहले मैं कृष्णा में डूब मरूँगा । छः महीने वह महादेवी की सेवा में रहेगी और छः महीने...

रुक्मिणी—ना भाई...पति-पत्नी के वियोग का दोष मैं अपने सिर न लूँगी...किसके भाग्य में पति कितने दिन रहे...कौन कहेगा...किस युद्ध में कहाँ कौन काम आ जायेगा...कौन जाने ? जितने दिन घुष्मेश्वर तुम दोनों को साथ रहने दें...पर हाँ...

विरोचन—वो...

रुक्मिणी—उसका पहला पुत्र इसी देवगिरि में हो...इसका वचन तुम्हें देना है।

विरोचन—और जो पहले कन्या हो...अपने बाप की यह अकेली कन्या जो हैं।

रुक्मिणी—इससे पहले भाई हुआ था...छः महीने का होकर न रहा।

विरोचन—तब विश्वास है मुझे...आपके आशीर्वाद से पहला पुत्र होगा...इस दुर्ग को देवभूमि में...आपका स्नेह उसे भी मिलेगा।

रुक्मिणी—इसके लिए मैं इसी यज्ञ में दुर्ग की भवानी और घुष्मेश्वर को मनौती मान चुकी हूँ।

विरोचन—सच महादेवी...

रुक्मिणी—मेरे मन में जो दो-तीन सबसे बड़ी कामनाएँ हैं... उनमें यह भी एक है। इस तन से जन्म लेने वाली पुत्री की तरह जिसे पालती रही उसके विषय में झूठ न कहूँगी। चुप रहो, अब आ रही है...लजा जायेगी।

विरोचन—महादेवी !

विजया—[प्रवेश कर] ले आई...

रुक्मिणी—दे मुझे—हाँ सिर झुकाओ पुत्र ! यह माला डाल दूँ।

विरोचन—प्रणाम देवी ! यह अवसर मुझे फिर मिले। यह थान तो बहुत बड़ा है।

रुक्मिणी—पूरे सौ हाथ का यह थान है। माला जँचती है न !

विरोचन—आँखों में चकाचौंध लग रही है। ऊँहूँ...देखा भी नहीं जाता मुझसे इसकी ओर महादेवी...इसका ठौर मेरा कण्ठ नहीं—[बढ़ कर विजया के कण्ठ में डाल देता है।]

रुक्मिणी—[हँस कर] अभी से अपनी कमाई देने लगे इसे—हाँ—हाँ—क्या कर रही है—पड़ी रहने दे अब अपने कण्ठ में—

विरोचन—पृथ्वी ने रत्नों को जन्म दिया था रमणी के कण्ठ के लिए। पुरुष के कण्ठ में तो ये बिराने लगते हैं।

विजया—मेरे पास आपके दिये कई हैं महादेवी...

रुक्मिणी—उनमें माता का स्नेह है और इसमें किसका है?

विजया—हूँ...चुप रहिए अब...

रुक्मिणी—भला तुझे भौंह टेढ़ी करने का ढंग तो अब आ गया। इस एक माला से तू जितना सीख गई उतना मेरी सौ से भी नहीं सीखती।

विरोचन—[ठठा कर हँसता है] इनकी आयु अभी कुछ सीखने की नहीं है महादेवी। छोड़िये अभी। यह अवस्था सपनों की है...वायु के पंख पर चढ़कर उड़ने की है...किसी के हृदय में इन्द्र-धनुष रचने की है।

विजया—जैसे श्रीमान् यह सब सपने में नहीं कह रहे हैं...आपका हृदय वायु के पंख पर चढ़ कर इस समय इन्द्र की रंगशाला के झरोखे में नहीं उलझ गया है।

रुक्मिणी—[हँस कर] ठीक कहा...अपने मन की नहीं कहते यह...चली आ यहाँ मेरी गोद में...एक कहें तो तीन कहना...डरना मत...हाँ...मुझे जब सुगन्ध की रुचि होती है...इसका सिर सूँघती हूँ...विरोचन!

विरोचन—अपने हाथ से इनका केश संस्कार भी तो करती हैं !

रुक्मिणी—इस पखवारे तो नहीं किया।

विरोचन—तब देवी की प्रसाधिका ने किया होगा।

रुक्मिणी—हाँ...मेरे सामने...

विरोचन—तब क्यों न वायु-मंडल गन्ध से भरा रहे !

रुक्मिणी—तुम कोई गन्ध लगाते हो कि नहीं...

विरोचन—अखाड़े की माँटी...

रुक्मिणी—अरे भला माटी में क्या गन्ध होती होगी ?

विरोचन—अभ्यास करते समय देह के पसीने में जब माटी लपट जाती है...ऐसी मोहक गन्ध निकलती है महादेवी ! फिर क्या कहूँ...

रुक्मिणी—हाँ...हाँ, उससे मलय और अगरु की गन्ध निकलती है कि कस्तूरी की—प्रियंगु...चम्पक और केतकी की गन्ध भी निकलती होगी।

विरोचन—इन सबका मूल धरती में रहता है महादेवी... इन सबसे धरती की गन्ध निकलती है...बस यही समझें आप...

रुक्मिणी—रहने दो यह ज्ञान...अब गन्ध लगाया करना...

विरोचन—अपने हाथ से माटी पोती जाती है...पर गन्ध अपने हाथ से...भला...कैसे...

रुक्मिणी—अच्छा तो...सुन रही है विजया !...हैं...हैं... कहाँ छिपा रही है फिर...

विरोचन—आपके आँचल में, जिसका जन्म से अभ्यास है।

[शंख, तूर्य और भेरी की ध्वनि। दूर पर जयनाद]

रुक्मिणी—अरे...उठ रे ! आर्यपुत्र आ गये।

विरोचन—मैं चला महादेवी ! सिंहद्वार पर...गोदावरी गंगा में स्नान करने लगे तब तक घोड़े को एड़ लगायी मैंने...कितनी देर लगेगी आने में...

[जाने की ध्वनि]

रुक्मिणी—विजया ! आरती की सामग्री लिवा कर चल...फूल, अक्षत और लावा मिला कर किसी प्रतिहारी के सिर पर उठा देना।

विजया—अपने सिर पर ले चलूँगी...

रुक्मिणी—कभी नहीं...मेरी बेटी दासी का कर्म नहीं करेगी। जा, जल्दी कर...

मंत्री—[प्रवेश कर] जय हो महादेवी...यज्ञ के अन्त में महाराज आ गये...शत्रु को प्रतिहत कर...उसकी राज्य-लक्ष्मी आप की चेरी है।

रुक्मिणी—आपके धर्म और भगवान् ज्योतिर्लिङ्ग की कृपा से... भवानी के प्रसाद से। मैं तो आप की भी दासी हूँ।

मंत्री—हाँ देवी...आप यह न कहेंगी तो फिर विनय और शील का और क्या होगा। पुरोहित और पण्डितों के साथ मैं चल रहा हूँ...आप भी देवियों के साथ...

रुक्मिणी—जी हाँ, मैं अभी आई...

[जाने की ध्वनि। एक ओर से मन्त्र स्वर और दूसरी ओर से स्त्रियों का मंगल गान वातावरण में गूँजने लगता है। सिंह-द्वार पर भीड़ : हर्ष-गान।]

भीड़—महाराज सिंहरण देव की जय...जय...जय...

एक स्वर—सुनो...सुनो, सेनापति क्या कह रहे हैं ?

सेनापति—विरोचन ! मार्ग बनाओ महाराज के लिए मार्ग...

विरोचन—बल्लाल-विजयी महाराज सिंहरण देव की जय... जय...[**देर तक जयनाद प्रतिध्वनित होता है** ।] देवगिरि की गुफाएँ बोल रही हैं...प्रासाद बोल रहे हैं...वृक्ष और लताएँ बोल

रही हैं...जय...जय...[**पानी के प्रवाह के ध्वनि**] अहा ! देवगिरि के जल-कुण्ड भी आज उमड़ कर मार्ग पर बह चले। हटो भाई हटो...महाराज को मार्ग दो...

सिंहरण—सब लोग...जो यहाँ आये हैं...सभी नर नारी... जो नहीं आ सके हैं वे भी मेरा प्रणाम ग्रहण करें।

मंत्री—वृक्ष अपने फल के भार से झुकता है देव ! और पर्वत अपने रत्नों और औषधियों के भार से...आप अपने यश के भार से झुक रहे हैं !

सिंहरण—आप सब के धर्म से...देवगिरि के निवासियों के धर्म से...भगवान घुष्मेश्वर और दुर्ग की भवानी के प्रसाद से मुझे विजय मिली है। इसमें मेरा क्या है...

मंत्री—सुन रहे हो सारंगधर और चन्द्रदेव...इस विजय में महाराज का कुछ नहीं है।

सारंगधर—तब कदाचित् मेरे संगीत रत्नाकर के रागों से विजय मिली।

चन्द्रदेव—भास्कराचार्य के सिद्धान्त-शिरोमणि का सार तत्व मैंने मुहूर्त्त में निकाला था। क्यों देव, काल भगवान की माया से यह विजय मिली।

सिंहरण—कृष्णा उतर कर विपक्ष की सेना सामने मुझे आप के लग्न और सारंगधर जी के रत्नाकर के राग दोनों का आनन्द मिला था।

मंत्री—यज्ञ का भस्म लाओ पुरोहित...यज्ञ की समाप्ति के

पहले ही शत्रु हार गया। शत्रुजित् यज्ञ का फल कब किसे इतनी जल्दी मिला था?

सिंहरण—प्रणाम देव! इस भस्म से मैं धन्य हूँ।

सारंगधर—महादेवी ने जिस निष्ठा से यज्ञ के नियमों का निर्वाह किया वह भी तो किसी दूसरी देवी से सम्भव नहीं था।

सिंहरण—ऐं...क्या किया देवी ने?

सारंगधर—पन्द्रह दिन ब्राह्म मुहूर्त्त में स्नान...दिन में फलाहार और कुश की चटाई पर शयन...नित्य दान और धर्म...[देवियों का गीत गाते प्रवेश] वह आ भी गईं आरती का पात्र लिये।

सिंहरण—तुम कहाँ तपस्या करती रही हो देवी?

रुक्मिणी—पहले आरती कर लूँ...[शंख और घंटा बजता है। आरती के साथ स्त्रियाँ गीत गाती हैं। मन्त्रों की ध्वनि होती है। फूल और लावा की वर्षा होती है।]

सिंहरण—इतने फूल कहाँ मिले?

रुक्मिणी—देवगिरि पर देवी ने वसन्त भेज दिया...पूरे पखवारे पहले। और हाँ, विजया का विरोचन से विवाह करना है। विजय-सन्देश के लिए जो माला मेरे हाथ उसके कंठ में पड़ी उसने मेरे सामने उसे विजया के कण्ठ में डाल दिया। उसके पहले मैं उसे वचन दे चुकी थी।

सिंहरण—महादेवी!...क्या किया आपने...विजया का वचन तो मैंने सेनापति देवदत्त को कृष्णा के जल में दिया था...

देवदत्त—पर कल कुमारी नहीं थी...महादेवी ने उनके सामने यह वचन दिया और इसी विश्वास पर माला डालने का साहस विरोचन ने किया। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ इस देवगिरि पर जीवन भर मैं किसी रमणी की कामना नहीं करूँगा। देख रहा हूँ मैं विरोचन का भाग्य आकाश चूम रहा है। यहाँ चलो विरोचन...

विरोचन—कहें सेनापति...

देवदत्त—हाँ यहाँ...सेनापति की ध्वजा लो और यह खड्ग भी...मैं अब तुम्हारी ध्वजा के नीचे केवल सैनिक रहूँगा।

सिंहरण—इस स्थिति में मेरा क्या धर्म है? महामंत्री सोठल देव निर्णय दें। सेनापति देवदत्त और विरोचन दोनों अभिन्न हैं मुझे... देवदत्त को वचन मैंने दिया और विरोचन को महादेवी ने...

सोठल—महाराज, पहले आप विश्राम करें। इसका निर्णय समय से हो जायगा!

देवदत्त—पृथ्वीवल्लभ! आप के वचन से मैं आप को मुक्त करता हूँ। महादेवी ने जिस कन्या का पालन किया उसका दान भी कर दिया। विजया पति का वरण कर चुकी। मैं जन्म का ब्राह्मण हूँ। सेनापति का काम क्षत्रिय का है। क्षत्रिय कर्म करने से धम की गति नहीं भूली मुझे।

सिंहरण—परशुराम, द्रोणाचार्य, सेनापति पुष्यमित्र सभी ब्राह्मण थे। नर्मदा की भूमि में मेरे सेनापति सेलेश्वर ब्राह्मण हैं और दक्षिण में आप भी ब्राह्मण हैं। चन्द्रवंश में सदा से मन्त्री और सेनापति ब्राह्मण रहे हैं। महाराज सुबाहु ने अपने पुत्रों में धरती का भाग जब लगाया और हमारे आदि पुरुष उनके पुत्र दृढ़प्रहार

ने जब दण्डकारण्य के दक्षिण के दंडक देश के अधिपति बनकर यहाँ श्री नगर बसाया तभी से सेनापति बराबर ब्राह्मण रहे हैं।

देवदत्त—यज्ञ और विजय के अवसर पर पृथ्वीवल्लभ मुझे यही दान दें। सेनापति के भार से मुझे मुक्त करें। जब तक संन्यास न लूँ, आपकी सेना में बना रहूँगा।

सोठल—साधु...पुत्र ! कठिन परीक्षा से तुमने मुझे और महाराज को बचा लिया। सारंगधर...

सारंगधर—आशातीत...

सोठल—आज से देवदत्त भी मेरा पुत्र है। तुम इसके भाई हो...श्रीकरणाधिकरण में यह मेरा सहयोगी भी रहेगा। देवगिरि के संकट में यह खड्ग लेगा। अब...

चन्द्रदेव—देवदत्त के लग्न चक्र में विवाह का योग नहीं है, यह भी तो मैं पहले से कह चुका था।

सोठल—ज्योतिष विद्या के आचार्य भास्कराचार्य के पौत्र की गणना में सन्देह कौन करेगा ! इस राज्य का सबसे बड़ा अभिमान यही है कि गणित और ज्योतिष के आचार्य भास्कराचार्य ने इस राज-सभा में सिद्धान्त-शिरोमणि की रचना की...उनके पौत्र चन्द्रदेव भी यहीं हैं।

चन्द्रदेव—पितामह की विद्या के प्रचार के लिए इस राज्य में एक पाठशाला की कामना मुझे है...जहाँ देश भर के जिज्ञासु पढ़ सकें।

सिंहरण—और किसी की कोई कामना नहीं है ?

सारंगधर—मेरे ग्रन्थ संगीत-रत्नाकर की टीका पृथ्वीवल्लभ स्वयं लिखें।

सोठल—श्रीकर्णाधिप का पुत्र भी महाराज का याचक है।

सिंहरण—जिस हाथ में अब तब खड्ग रहा...उसमें अब लेखनी रहेगी, क्यों भद्र!

सारंगधर—नर्मदा से कावेरी तक की भूमि आप के शस्त्र से जीती गई। आपकी विजय अब खड्ग की न होकर लेखनी की होगी।

सिंहरण—स्वीकार है मुझे यह भी...पंडित नहीं तो पंडितों का सेवक तो हूँ।

देवदत्त—विजया का दान पृथ्वीवल्लभ अपने हाथ से विरोचन को दें। जितना सुख मुझे इससे होगा, दूसरे किसी लाभ से नहीं।

सिंहरण—महादेवी दोनों को यहीं ले आयें...

रुक्मिणी—चल रे चल...[धीमे स्वर में] चल लाज न कर...

सिंहरण—[दोनों का हाथ अपने हाथ में लेकर] विरोचन, विजया का हाथ पकड़ो और फिर दोनों देवदत्त से आशीर्वाद लो।

देवदत्त—स्वस्ति-वाचन और फूल अक्षत की वर्षा करें आप लोग...कृतार्थ हूँ मैं आज [मंत्रों की ध्वनि] उठो विरोचन... सेनापति जो मैं बना रहता तो तुम दोनों का मस्तक मेरे पैरों पर न होता।

सोठल—त्याग से मनुष्य देवता बनता है। इससे बड़ा कोई दूसरा अधिकार नहीं है।

देवदत्त—तुम दोनों का पुत्र किसी दिन यादव सेना का सेनापति बने...

रुक्मिणी—उसका नाम क्या होगा ब्राह्मण देवता !...

देवदत्त—उसका नाम चंड होगा। सूर्य को तरह वह शत्रुओं को तपा देगा। सूर्य का एक नाम चंड भी है।

सिंहरण—सेनापति देवदत्त आज किस शक्ति से अभिभूत हैं।

सारंगधर—हाँ पृथ्वीवल्लभ ! इनकी आकृति पर...मुक्ति का मन्त्र जो व्रत इन्होंने लिया...उस एक कामना के छोड़ देने पर जगत की सारी कामनाएँ मिट जाती हैं। पर अब यहाँ विलम्ब न हो... यज्ञ के अन्त का दान भी अभी करना है।

चन्द्रदेव—मेरी याचना अभी रह गई।

सिंहरण—आपकी पाठशाला के लिए पत्तन को भूमि दी जा रही है। उस मंडल की सारी आय पाठशाला में लगेगी।

सारंगधर—संगीत-रत्नाकर की टीका लिखेंगे आप...

सिंहरण—इसे मैं स्वीकार कर चुका हूँ, जो स्थल समझ में न आयेगा वहाँ तो सहायता करेंगे आप ?

सोठल—[हँस कर] इसी बहाने आप की राजधानी में रहना है संगीत, काव्य और वैद्यक के अवतार आचार्य सारंगधर को...देवगिरि दुर्ग किसी भी शत्रु के लिए कठिन हो जाय... इसका यत्न भी करना है। ब्रह्मावर्त, अन्तर्वेद, अंग-वंग की भूमि यवनों के अधिकार में जा चुकी है। लक्षण ऐसे भी हैं कि यवन अब दक्षिण बढ़ेंगे।

सिंहरण—हूँ...कुछ यत्न सोचा है आपने ?

सोठल—हाँ...देखें यह मानचित्र...यह बाहर का परकोटा जिसमें नगर भी घिरेगा। ये दो दुर्ग के होंगे...इनके बीच में यह परिखा होगी...

जिसमें सदैव जल भरा रहेगा। चारों ओर का पर्वत खड़ा सीधा काट दिया जायेगा इस सीमा तक...जिसमें खड़ी कटान पचास हाथ की होगी, चींटी और सर्प भी जिस पर न चढ़ सकें।

सिंहरण—यह चिह्न क्या है ? [मानचित्र पर दृष्टि गड़ा कर]

सोठल—दुर्ग के ऊपर जाने के लिए ये दो गुप्त मार्ग पर्वत काट कर सुरंग के रूप में बनाये जायेंगे। आपके वंश का अमिट चिह्न यह दुर्ग होगा।

दूसरा दृश्य

[रामदेव की राज-सभा। रामदेव चिन्ता में सिंहासन पर बैठा है। सामने मन्त्री हेमाद्रि हस्तलिखित पुस्तक के पन्ने उलट रहा है।]

रामदेव—यह दिन भी देखने को मिला आर्य...चतुर्वर्ग-चिन्तामणि की प्रशस्ति में आपने इस वंश के पूर्व-पुरुषों के वंशवृत्त और उनके विक्रम को अमर कर दिया।

हेमाद्रि—पृथ्वीवल्लभ सिंहरण ने यह लोक छोड़ने के समय यही कामना की थी कि उनके प्रतापी पूर्वजों की प्रशस्ति लिखी जाय। मन्त्री सोठल ने इस कार्य के लिए काशी से कवि बुलाने का निर्णय श्रीकरण के प्रकरण में तीन स्थान पर लिखा है...फिर भी सभी कार्य अपने समय पर होते हैं। आप के यशस्वी पिता और पितृव्य के समय में भी यह कार्य न हो सका इसका श्रेय आपके भाग्य को था।

रामदेव—मेरे या आपके...

हेमाग्नि—आपके...वाणी और विचार की गति जिस काल में अन्तर्वेद से उठ गई...हरद्वार, प्रयाग और काशी पर यवनों की काली घटा घिरी है...ज्ञान-सूर्य की किरणें वहाँ पड़तीं नहीं... धर्म का पोल हो रहा है। विद्या का भी हरण हो रहा है...पुराने ग्रन्थ खोज-खोज कर जलाये जा रहे हैं...वहाँ नये ग्रन्थ क्या बनेंगे ?

रामदेव—इसीलिए आप हिमालय की छाया छोड़ कर इस देवगिरि में आये...

हेमाग्नि—मैं अपने नहीं आया...आपके यश ने मुझे खींच लिया।...नदो-नद समुद्र की ओर बढ़ते हैं...कवि और पंडित अपने उस आश्रय की ओर बढ़ते हैं जिससे उनकी वाणी और विद्या को प्रेरणा मिलती है।

चंड—[प्रवेश कर] महाराज ! माता आपका प्रसाद चाहती हैं।

रामदेव—कौन, बुआ...?

हेमाग्नि—विजया देवी...?

चंड—जी...[आशंका के भाव]

रामदेव—अभी लिवा आओ...किसी भी समय वह मुझ पर कृपा कर सकती हैं। देवगिरि का जीवित इतिहास जिसे देखना है, विजया बुआ को देख ले।

हेमाग्नि—निश्चय...महारानी रुक्मिणी ने जिनका पालन किया... आपके वंश के साथ जिनका इतना घना संबंध है...

चंड—अभी लिवा लाता हूँ...[प्रस्थान]

रामदेव—[illegible] कहाँ से आरम्भ होती है आर्य !...

हेमाग्नि—संपूर्ण चन्द्रवंश से चक्रवर्ती सुबाहु के पुत्र दृढ़धरा से ..जिनकी बारहवीं पीढ़ी में रणरंग पुत्र भिल्लनदेव पैदा हुए... देवगिरि के संस्थापक।

रामदेव—देवगिरि के उन संस्थापक की प्रशस्ति में आपने क्या लिखा है ?

हेमाग्नि—कंस के विध्वंस करनेवाले उस यदुवंश में पृथ्वीपाल भिल्लनदेव का जन्म हुआ, जिनके तेज रूपी दीपक की लौ में शत्रु रूपी पतंग जल कर भस्म हो गये। विनत-शीश राजपुत्रों की मुकुटमणियों से जिनके चरण प्रकाशित हुए और जो शत्रु के दर्प-सर्प के लिये सदैव गरुड़ रहे।

रामदेव—इस प्रशस्ति में मेरी चर्चा न हो। पराक्रमी पूर्वजों के साथ मुझे समानता का अधिकार न मिले, कृपा कर इसका निर्वाह करेंगे।

हेमाग्नि—हा...हा...हा...हा...क्यों न हो...धरती के भार हरनेवाले भगवान् कृष्ण के वंशज जो हैं आप...सिंहरण देव की प्रशस्ति के सात श्लोक मेरे धर्म-शास्त्र में बने हैं। शत्रुओं को बार-बार पराजित कर किस प्रकार वे पृथ्वी के गर्व घन गये। विद्या, कला, धर्म और नीति का पालन उन्होंने किस प्रकार किया।

रामदेव—ऐसे प्रतापी वंश में इस भाग्यहीन से कुछ न बना...

हेमाग्नि—वह तब कहा जाता जब आप मुझे अपनी प्रशस्ति लिखने का अधिकार देते और मेरी सरस्वती उसमें रम जाती। श्री कृष्णदेव ने प्रजा का नीति से पालन किया। धर्म और अर्थ के वे साक्षात् स्वरूप थे। अपने छोटे भाई महादेव के साथ उनकी जोड़ी...राम

और लक्ष्मण की जोड़ी बन गई थी । महादेव ने कभी किसी स्त्री या बालक का वध नहीं किया...इसीलिये तैलंग सिंहासन पर स्त्री बैठाई गई और मालव-नरेश वैराग्य का बहाना बना कर अपने शिशु को सिंहासन देकर वन में चले गये। उनकी फूँक से ये राज्य उड़ गये होते पर उन्होंने स्त्री और बालक के विचार से उधर देखा भी नहीं। गुर्जर, कोंकण, कर्णाट और लाट के नरेशों को युद्ध में हरा कर विन्ध्य के दक्षिण के अकेले चक्रवर्ती थे वे। सोमेश्वर की सेना जिसके प्रताप की अग्नि को अधिक भयंकर मान कर समुद्र की बड़वाग्नि में भस्म हो गई।

रामदेव—पूर्वजों की प्रशस्ति सुन कर मैं धन्य हुआ आर्य! देवगिरि के बारे में आपने क्या लिखा है ?

हेमाग्नि—इस यशस्वी वंश के मन्त्री पद से मेरे जन्म-जन्म के दुष्कर्म धुल गये। देवगिरि के सम्बन्ध का श्लोक सुना दूँ मैं आप को। शस्त्र और शास्त्र दोनों की साधना आपके पूर्वपुरुष सदैव करते रहे। सारंगधर के संगीत-रत्नाकर की टीका पृथ्वीवल्लभ सिंहरण ने स्वयं लिखी।

रामदेव—पर मैं उतनी संस्कृत नहीं जानता।

हेमाग्नि—फिर भी आप समझ लेंगे। देवगिरि का वर्णन सुनें अब—

"आस्ते मण्डितदण्डका परिसरः श्रीसेउणाख्यं परम
देशः पेशलवेषभूषणवचो माधुर्यधुर्याकृतिः ।
तस्मिन् देवगिरिः पुरी विजयते त्रैलोक्यसारश्रियां
विश्रान्तिः सुरशालिशैलशिखरस्पर्धिष्णुसौम्यावलिः ॥

रामदेव—आप का यह वर्णन तो मथुरा और द्वारका की समानता करता है। दण्डकारण्य के समीप सेउण देश है जो सब प्रकार पुष्ट है और वेश, भूषण, वैभव और आकृति में माधुर्य की धुरी है। इसी में त्रिलोक की श्री और सार तत्व की देवगिरि पुरी बसी है, जिसके भवन देवपुरी के भवनों से स्पर्धा करते हैं।

हेमाग्नि—वसुदेव की मथुरा, कृष्ण की द्वारका और सिंहरण देवकी देवगिरि...तीनों ही पर यशस्वी चन्द्र-वंश की विजय-वैजयन्ती फहराती रही है। पुरूरवा, प्रणति, मुरारि और सुबाहु के उत्तराधिकारी आप इससे लज्जित क्यों हो रहे हैं ? यहाँ महाभाग उन पूर्व-पुरुषों के आचरण पर जब तक आप चल रहे हैं तब तक देवगिरि द्वारका की बेटी है।

रामदेव—इस ग्रन्थ के कितने भाग हैं ?

रामदेव—चार भाग। ब्रह्म खंड, जिसमें प्रतापी यदुवंश की प्रशस्ति भी है। दान खंड में धर्ममूलक दान-वर्णन, तीर्थ खंड में पवित्र तीर्थों का वर्णन और मोक्ष खंड में जगत् की माया से छूट कर मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन है। अन्त के परिशेक खंड में उपास्य देव, श्राद्धविधि, धार्मिक कृत्यों का समय-निर्णय और प्रायश्चित का विधान है।

रामदेव—तब तो यह पूरा धर्म-शास्त्र है।

हेमाग्नि—इसीलिए तो इसका नाम चतुर्वर्गचिन्तामणि है। मनु, याज्ञवल्क्य और पराशर की स्मृति-वाणी पर ही यह ग्रन्थ लिखा गया है।

रामदेव—जब हम लोग न रहेंगे...आपका यह ग्रन्थ देवगिरि के गौरव में पूर्णिमा का चन्द्रमा बनेगा ।

हेमाग्नि—देवगिरि का गौरव आपके पूर्वजों का गौरव है। उनका प्रताप न होता, विद्या और ज्ञान की साधना न होती तो न यहाँ भास्कराचार्य होते, न लक्ष्मीभार, न चन्द्रदेव। काश्मीर के सोठल और उनके पुत्र सारंगधर भी यहाँ न होते। हिमालय में देवप्रयाग के निकट जन्म लेकर मैं भी यहाँ कैसे आता ? समुद्र में सब ओर से आकर नदियाँ गिरती हैं...देवगिरि के यादव-समुद्र में में देश भर के विद्या और वाणी, कला और लक्षण के सेवक नदियों की भाँति आकर मिले ।

[चंड और विजया का प्रवेश]

रामदेव—प्रणाम बुआ...!

विजया—[भरे कंठ से] सुखी रहो बेटा !

हेमाग्नि—आप ऐसी उदास क्यों हैं ? शरीर स्वस्थ तो है ?

विजया—ब्राह्मण देवता ! अब इस शरीर का क्या ? साठ वर्ष हो गये इसी देवगिरि के अन्तःपुर में जन्म लिया। महारानी रुक्मिणी ने बेटी का बोल बोल कर मेरा पालन किया। इसके प्रताप का सूर्य ऐसा ही बना रहता और मैं चली जाती। पृथ्वी-वल्लभ सिंहरण को देखा...मोती, रत्न, सोना, चाँदी की वर्षा यहाँ आँखों देख चुकी हूँ। प्रतिवर्ष विजया दशमी को इसी सभा-भवन में अधीन राजाओं से जो मान मिलता था...उससे रत्नों का अम्बार लग जाता था ।

रामदेव—अब भी लगता है बुआ...हमारे कोष में धन आज भी समुद्र के ज्वार-सा बढ़ रहा है। तुम्हें चाहिए तो कहो।

विजया—इच्छा और महादेव इन्हीं हाथों के बाल-गोपाल रहे...

[रो पड़ती है।]

रामदेव—मुझसे कोई अपराध हो गया या...हाँ...हाँ, जो कहो अभी पूरा होगा पर रोओ नहीं !

विजया—हम लोगों का भाग्य खोटा हो रहा है बेटा ! देवताओं का कोप है हम लोगों पर...

रामदेव—कहो भी क्या बात है ?

विजया—ऐसा भयानक सपना कभी नहीं देखा था। महामन्त्री सोठल जब इस दुर्ग के परकोटे और खाइं बनवा कर चारों ओर से पचास हाथ पहाड़ सीधा कटवा रहे थे, हम स्त्रियाँ दाँतों में उँगली दबा कर देखती थीं। दस सहस्र पत्थर काटने और जोड़ने-वाले तीन वर्ष बराबर लगे रहे...पचास वर्ष हो गये वह सब देखे और अब मेरे अभाग्य से ऐसे सपने आ रहे हैं।

हेमाग्नि—अपना स्वप्न कहें देवी ! क्या देखा आपने...

विजया—हे भगवान् ! कैसे कहूँ...कहने के पहले मेरी जीभ गिर जाय। महामन्त्री सोठल कह रहे थे सीधे कटे पहाड़ पर चींटी भी नहीं चढ़ सकेगी।

रामदेव—मन को स्थिर कर कहो बुआ ! किसने कहा तुमसे कि देवगिरि पर कोई शत्रु चढ़ आया ?

विजया—सात दिन हो रहे हैं स्वप्न देखे। इसके दोष से

छूटने के लिए कृष्णावेरुडा में गयी...वहाँ एक साधु ने कहा देवगिरि पर देवों का कोप आ रहा है।

चण्ड—मुझे भी नहीं बताया...वहीं से चल पड़ीं कि जब तक देवगिरि देख न लेंगी अन्न नहीं लेंगी।

रामदेव—क्या कह रहे हो...बुआ सात दिन की भूखी हैं ?

चण्ड—मेरे बहुत कहने पर कभी कोई कन्द कभी दो सीपी दूध...

रामदेव—कहो बुआ...तुम्हारे स्वप्न के परिहार के लिए मैं घुष्मेश्वर और इलापुर के कैलास-मंदिर में अनुष्ठान कराऊँगा।

विजया—इसीलिए तो अन्न छोड़ दिया कि जब तब तुम भूतनाथ और भवानी को मना न लो, मैं व्रत करूँ।

चण्ड—अब भी तो कहो...

विजया—हाय भगवान्...चण्ड को जन्म देकर पाँच वर्ष के भीतर वे चले गये। और मुझे मृत्यु भूल गई। महारानी रुक्मिणी ने मुझे पाला-पोसा। मेरे लड़के को भी तीन वर्ष तक गले लगाये रहीं। [**रोने लगती है।**]

हेमाग्नि—आपके पुण्य से देवगिरि का अनिष्ट नहीं होगा देवी ! कहें भी, क्या देखा...

विजया—तब सुनें देवता...दो घड़ी रात थी...देखा चारों ओर से काले अजगर देवगिरि के पहाड़ पर चढ़ रहे हैं...सब ओर आग लगी है और दुर्ग के सिंहद्वार से लाल आँखोंवाले राक्षस... दाढ़ी हिलाते...भयानक भाले और खड्ग लिये चले आ रहे हैं... यमराज की सेना भी वैसी भयानक और निर्दय न होगी। बालकों

को पकड़ कर पर्वत पर पटक रहे हैं किसी को घुमा कर नीचे फेंक देते हैं...स्त्रियों की दुर्गति कैसे कहूँ...हाय रे...[गिरने की ध्वनि]

रामदेव—बुआ मूर्च्छित हो गईं चण्ड ! वैद्य को बुलाओ...

हेमाग्नि—ठहरो...इनकी मूर्च्छा की बात यहाँ कोई न जाने, वैद्य भी नहीं...नहीं तो इनके स्वप्न की बात खुल जायगी और तब यहाँ के निवासी धैर्य और साहस छोड़ देंगे। इस पंचपात्र से जल के छींटे मारो...नहीं...मैं सचेत करता हूँ इन्हें...तुम द्वार पर खड़े हो जाओ...किसी को भीतर न आने देना।

चण्ड—[उद्वेग में] जो आज्ञा...

हेमाग्नि—[जल के छींटे मार कर] देवी ! देवी...!

रामदेव— बुआ...विजया बुआ...

विजया—[मूर्च्छा में] कूद पड़ो...कूदो पहाड़ के नीचे बहनो...देखना किसी की देह पिशाच न छू लें। प्राण का मोह न करना...धर्म बच जाय।

हेमाग्नि—[जल के छींटे मार कर] क्या कह रही हैं...यहाँ कोई पिशाच नहीं है।

विजया—नहीं...है...कोई पिशाच नहीं है...देवता...

रामदेव—चेत करो बुआ...हम लोग हैं...

विजया—एँ...रामदेव बेटा...मन्त्री देवता...चण्ड कहाँ गया ?

रामदेव—वहाँ द्वार पर है बुआ...देख लो...

विजया—हो हाँ...वही तो है।

रामदेव—आज हो चलो तुम मेरे साथ बुआ घुष्मेश्वर और

कैलास के दर्शन को...तुम्हारे स्वप्न के निवारण को दोनों मन्दिरों में अखण्ड अनुष्ठान होगा।

विजया—अपने तन के पुत्र से तब नहीं कहा...फिर किससे कहूँगी। देवगिरि के चार चक्रवर्ती और तीन मंत्रियों की राजनीति इन्हीं आँखों से देखी और इन्हीं कानों से सुनी है मैंने...अनुष्ठान के संकल्प में तो बात खुल जायेगी।

हेमाग्नि—नहीं देवता के...संकल्प में स्वप्न-भय-निवारणार्थ रहेगा। कोई यह न जानेगा कि स्वप्न क्या है।

विजया—मैं किसी दूसरे से न कहूँगी मंत्री! आप विश्वास करें।

हेमाग्नि—महारानी रुक्मिणी की धर्मकन्या का विश्वास न करेंगे तो किसका करेंगे देवी! अब आप कुछ आहार करें...बहुत निर्बल हो गई हैं आप...

विजया—देवगिरि का कल्याण हो...अन्न तो अब मैं अनुष्ठान की समाप्ति पर ही लूँगी। ज्योतिर्लिंग भगवान् का प्रसाद मँगाया है...इस समय वही लूँगी।

[नेपथ्य में कोलाहल। नगर में हाहाकार]

हेमाग्नि—[गम्भीर होकर] क्या है यह चण्ड?

चण्ड—ऐं महामन्त्री! नगर जल रहा है। पश्चिम का द्वार तोड़ कर पिशाच यमपरिवार-से नगर में घुस रहे हैं। देखा नहीं जाता यह दृश्य महामंत्री! नगर के पश्चिम के सभी घरों में आग लगा दी इन यवनों ने...अबलाओं का अपमान...बालकों की हत्या...किस घड़ी में स्वप्न देखा था...क्या वही सब सत्य हो रहा है?

हेमाग्नि—ऐसा झूठा है यह दिल्ली का यवन अलादीन... आतिथ्य की याचना कर राह बदल कर आक्रमण किया। देवगिरि अजेय रहा है...अजेय रहेगा। दो सहस्र सैनिक दुर्ग में हैं...उन्हें लेकर और नगर के सभी युवकों के साथ चण्ड तुम दुर्ग के बाहर जाओ...मैं भी आ रहा हूँ, स्त्रियों के धर्म के लिए दुर्ग का सिंह-द्वार बन्द होगा और...आप दुर्ग में रहेंगे।

चण्ड—अन्न के बोरे भीतर फेंके जा रहे हैं...तो मैं अब चला... इस भूमि का ऋण आज भरना है। हर हर महादेव...दौड़ो वीरो...यवन शत्रु नगर लूट रहा है।

विजया—ऐं! आ गये पिशाच!...

रामदेव—धोखा हुआ बुआ...शंकर की सेना से इसकी भेंट नहीं हुई, उत्तर से न आकर यहाँ पश्चिम से आ टूटा।

हेमाग्नि—[दूर की ध्वनि] बादल से उमड़ते हाथी शंकर के आ रहे हैं...अभी भी समय है...एक भी यवन न बचे...

विजया—तुम्हारे गुप्तचर कहाँ थे...कि सौ कोस पहले ही यह नहीं रोका गया!

रामदेव—राजकुमार शंकर इसकी टोह पर गये हैं...पर अब यहाँ तो सेना भी नहीं है।

विजया—तुम हो...चण्ड है...महामंत्री हैं...लड़ मरो बेटा! पीठ न दिखाना...

[कोलाहल और बढ़ता है। सिंहद्वार पर कुल्हाड़ों की चोट पड़ती है]

रामदेव—दूसरा द्वार भी शत्रु तोड़ रहा है। मैं चला बुआ

दुर्गद्वार पर...तीसरा द्वार भी जो टूट जाय तो तुम इस कुल की देवियों की लाज...

विजया—तुम जाओ...उनकी छाँह भी यवन न छू सकेंगे... सुरंग से नीचे जल में गिरने का जो मार्ग मेरा देखा है, सब को उसी में गिरा दूँगी।

[नेपथ्य में—राजकुमार शंकर की जय...शत्रु भाग रहे हैं। धीरज धरो...शत्रु भाग रहे हैं।]

रामदेव—[दूसरी ध्वनि] आप लौट आये महामन्त्री ?

हेमाग्नि—परिखा के ऊपर का पुल मेरे पहुँचने के पहले टूट चुका था। इस दुर्ग में शत्रु के आघात पर दुर्भाग्य ने और भी परिहास किया।

रामदेव—अब और क्या ?

हेमाग्नि—अन्न की जगह नमक के बोरे दुर्ग में फेंके गये। बिना अन्न के कैसे चलेगा ? राजकुमार शंकर ने नगर के बाहर शत्रुओं को खदेड़ दिया। पर यह भी सूचना है कि सुल्तान अपने भतीजे के पीछे और बड़ी सेना लेकर आ रहा है। इस बात से हमारे विजयी सैनिक भी साहस खो रहे हैं। इस स्थिति में शत्रु दुर्ग न घेरे तब तक उससे सन्धि कर ली जाय।

रामदेव—स्वतंत्रता देकर मंत्री...

हेमाग्नि—नहीं धन देकर...इस बार हम स्वतंत्रता की रक्षा शस्त्र से नहीं, धन से करेंगे...फिर ऐसे असावधान न रहेंगे।

रामदेव—उतना धन नहीं तब...हमकायर हैं...

हेमाग्नि—मन्त्री बुद्धि से सोचता है महाराज ! अब जो श... से सम्भव नहीं...बुद्धि से करना है। साम, दाम, दंड, भेद—नीति के इन चार खम्भों में हम दूसरे का सहारा लेंगे।

—:o:—

पत्थर में प्राण

पुरुष-पात्र

कृष्णराज	राष्ट्रकूट के महाराज
दन्तिदुर्ग	युवराज
त्रिलोचन	कैलास-मंदिर का प्रधान शिल्पी
मातङ्ग	सहकारी शिल्पी

नारी-पात्र

भवनागा	महारानी
चम्पकमाला	त्रिलोचन की प्रेयसी

—::o::—

पहला दृश्य

[इलापुर की पर्वत पटी। दक्खिन से उत्तर की ओर पर्वत-श्रेणी बीच में पूर्व की ओर दबती गई है। इस प्रकार पर्वत का रूप अर्धवृत्त-सा लगता है। द्वितीया के चन्द्रमा-सी किंचित् वृत्त बनाती पर्वतमाला में प्रायः बीच के भाग में कैलासनाथ का मन्दिर बन रहा है। इस मन्दिर के दायें पुरानी गुफाएँ पहले से बनी हैं। इसके बायें पर्वत के ऊपर से जल-प्रवाह बराबर एक गति और क्रम में नीचे खड्ड में गिर रहा है। जल-प्रवाह की ध्वनि में इस मन्दिर के आयतन में पत्थर काटने के संगीत के नये स्वर पैदा कर रही है।

मन्दिर के प्रवेश-द्वार के सामने नन्दी-मण्डप के दोनों ओर ध्वज-स्तम्भ पर चित्रित त्रिशूल और भीमकाय पाषाण-गज देख पड़ते हैं। नन्दी-मण्डप के वितान पर प्रधान शिल्पी त्रिलोचन सहकारी शिल्पी मातंग के साथ उत्सुक मुद्रा में खड़ा है।]

त्रिलोचन—कहाँ हैं महादेवी इस समय...[उद्वेग के स्वर और मुद्रा में]

मातंग—रंग मण्डप में। शिव-विवाह की कन्या जो आपने अपने हाथ वहाँ मूर्तियों में रच दी है उसी को देख रही हैं।

त्रिलोचन—हूँ...कुमार-सम्भव है उनके हाथ में...? [कष्ट की मन्दी हँसी]

मातंग—जी...श्रीभवन के व्यास...क्या नाम है उसका...

त्रिलोचन—नीलमणि...तब...कहो...मेरे पूछने की राह मत देखो, कहते चलो।

मातंग—पार्वती के विवाह के प्रसंग में कालिदास के श्लोकों को पढ़ कर नीलमणि सुना कर अर्थ कर रहे हैं...उस वर्णन में किस देवता का स्थान कहाँ है, किसकी मुद्रा क्या है, इन सब के अनुसार महादेवी मूर्तियों का निरीक्षण कर रही हैं।

त्रिलोचन—कालिदास ने अपनी कल्पना का रंग देवों को भी चढ़ा दिया मातंग! कौन जाने इस प्रसंग का वर्णन उन्होंने किस लेखनी से किया...[**गहरी साँस लेकर**]

मातंग—सोने की...और क्या कहा जा सकेगा?

त्रिलोचन—सोना भी कड़ा होता है। वसन्त के सभी फूलों का रस सुखा कर वह लेखनी बनी होगी या सारे संसार के अनुराग ने वह रूप लिया होगा। शब्द के आधार पर रस, ध्वनि और अलंकार के रंग से कालिदास ने इस प्रसंग का चित्र खींचा। मेरा आधार पत्थर है...उस पर लोहे की छेनी की रेखाएँ उस तुलना में कैसे खड़ी होंगी? अलौकिक चमत्कार का अवसर यहाँ कहाँ है!

मातंग—पर वे खड़ी हुई हैं। अनुराग का रोमांच जो कालिदास ने पार्वती की देह में अनुभाव में दिखाया वह पार्वती की पाषाण-मूर्ति में भी राजमाता भवनागा को देख पड़ा। रह-रह कर कह उठती हैं—जो कहीं इन मूर्तियों में प्राण पड़ जाता! विस्मय के भाव उनके मुख पर उठते और लय होते देख कर आ रहा हूँ यहाँ।

त्रिलोचन—हा...हा...हा...क्यों भद्र ! वे मूर्तियाँ निर्जीव हैं ? भाव छोड़ कर प्राण की दूसरी पहचान क्या है ? भावहीन मूर्तियाँ हैं वे ? पाँच सहस्र शिल्पी पूरे सात वर्ष से करते क्या रहे हैं ? [वह काँप उठता है ।]

मातंग—यह कौन कहेगा ? कैलासनाथ के समूचे आयतन में एक अंगुल पत्थर ऐसा नहीं है जिसमें भाव की हिलोर न हो ।

त्रिलोचन—फिर ये मूर्तियाँ प्राणहीन कैसे हुईं ? प्रकृति के तीन गुण सत, रज, तम इसमें हैं या नहीं ? त्रिगुणात्मिका सृष्टि के सभी अंग भाव, कर्म, धारणा और समाधि इनमें हैं या नहीं ? [भाव-विमोहित होने की मुद्रा]

मातंग—है तो ! कैलाशनाथ के इस अनूठे मन्दिर की मूर्तियों में जो नहीं है वह सृष्टि में भी कहीं नहीं है ! राजमाता कह रही थीं अपने ।

त्रिलोचन—फिर कहा नहीं महादेवी से इन मूर्तियों को प्राण-हीन न मानें । हम लोग न होंगे मातंग ! महादेवी भवनागा और उनकी सन्तान न रहेगी...राष्ट्रकूट की राज्यलक्ष्मी का जब पता न रहेगा, इन्थापुर की इस पर्वतपटी के बीच में यह मन्दिर सुगतों पर वेद की विजय बन कर खड़ा रहेगा !

मातंग—चार वेद, अठारह पुराण, रामायण, महाभारत, संस्कृत और प्राकृत के सभी काव्य इस मन्दिर की मूर्तियों में अवतरित हो उठे हैं ।

त्रिलोचन—मध्य के शिवमन्दिर का विमान देख रहे हो ?

मातंग—जिस जगह इस मन्दिर के संकल्प का जल गिरा.. ?

जहाँ आपको पहली छेनी पड़ी...सात वर्ष बीत रहे हैं नित्य जिसका दर्शन कर उठते...जिसके दर्शन को चाह देवता भी करते होंगे... कोई नई बात आज उसके विषय की...[उत्सुक होकर]

त्रिलोचन—आचार्य कुमारिल ने इसी स्थान पर खड़े होकर धर्म का शंख फूँका था। उस समय मैं बालक था मातंग ! कुल आठ वर्ष का। सौगतों के साथ उनका शास्त्रार्थ पहले-पहल मुझे उज्जयिनी में सुनने को मिला था। समझ में तो कुछ नहीं आया पर एक ओर स्वामि कार्तिक के अवतार कुमारिल, दूसरी ओर सैकड़ों पीले कपड़ों में बौद्ध...फिर भी वे सब हार गये और दूसरे दिन वहाँ एक भी सौगत नहीं बचा। सब भाग गये रात को ही।

मातंग—हैं...तो आप तभी से उनके साथ हो लिये...!

त्रिलोचन—घर से भाग कर मैं उनकी मण्डली में आ गया था...उस समय जो घर छोड़ा...बयालीस वर्ष हो गये फिर न जा सका और आज...[गहरी साँस]

मातंग—इस मन्दिर के निर्माण में आपकी सभी कामनाएँ पूरी हो गईं...यही कहते हैं न ?

त्रिलोचन—हाँ...तब...कहो...चुप क्यों हो गये। छिपा कर रखने का भाव जिस किसी के मन में आया...पाप का जन्म भी वहीं हुआ था। मन में जो उपजे उसे बाहर करो, गाकर नाच कर, चित्र बना कर, मूर्ति गढ़ कर...कालिदास ने अपने काव्य में यही किया था। भीतर जब जो अंकुर फूटे उसे बढ़ने के लिए बाहर करने को ही कला कहते हैं भद्र !

मातंग—कल महाशिवरात्रि है । कैलासनाथ की प्राण-प्रतिष्ठा कल होगी। मन्दिर-प्रवेश का यज्ञ और भोज कल होगा...

त्रिलोचन—अपनी बात कहो जो मैं जान चुका हूँ उसे सुना, कर...

मातंग—अवन्ती, श्रीभवन, कांचीपुरम् की अप्सरायें...

त्रिलोचन—यहाँ नाचेंगी...यह तो मैं भी जानता हूँ...कानों में उनका संगीत गूँज रहा है और आँखें उनका नृत्य भी देख रही हैं। विस्मय मत करो। सच कह रहा हूँ मैं।

मातंग—आपके कान आपके नहीं हैं और न आपको आँखें आपकी हैं। आप के भीतर के कलाकार ने छीन लिया है उन्हें आप से इसलिये कल के आनन्द का सब कुछ आप अभी देख-सुन रहे हैं। मैं कुछ कह रहा था।

त्रिलोचन—आज कुछ अधिक पी गये हो तब...सब ओर तुम्हें बस वही पद्मराग का रंग देख पड़ता है।

मातंग—[मन्द हँसी] नहीं...अपनी शपथ जो आज देखा भी हो...कह रहा था कि...शिल्पियों पर द्रम्म की वर्षा होगी कल। प्रधान शिल्पी आचार्य त्रिलोचन को शुभतुंग अकालवर्ष महाराज कृष्णराज अपने हाथ रत्नों की माला उपहार में देंगे। विषयपति, राष्ट्रपति, ग्रामकूट, महत्तक और आयुक्तक के उपहार अलग होंगे। मित्र राजा और माण्डलीक उपहार देंगे ही। सुन तो यह भी रहे हैं कि हमारे पृथ्वीवल्लभ के शत्रु महोदया पुरी के महाराज वज्रायुध अपने मन्त्री को भेज रहे हैं। उनका उपहार भी कम न होगा।

त्रिलोचन—तुम चाहते हो कि इन उपहारों के रखने को मैं

बैठ कर ऐसी मंजूषा बनाऊँ जो ऊपर से देखने में छोटी हो पर भीतर जिसका पेट इतना बड़ा हो जो कुबेर के पेट से भी बड़ा हो। किसी पुरस्कार के लिए इस मन्दिर का प्रधान शिल्पी नहीं बना मैं।

मातंग—तब किसी दूसरे को दे दीजियेगा...अरे! हाँ पिछले सात वर्ष जो आपको कभी वीणा और कभी कण्ठ की रागिनी में लपेट कर रखती आई है; जिसका संगीत आपकी कला और कल्पना का उद्दीपन बन कर इन पत्थर की मूर्तियों में प्राण फूँकता रहा है, उसी चम्पकमाला को दे दीजियेगा सब...[**विनोद का स्वर**]

त्रिलोचन—[भरे कण्ठ से] नहीं...मातंग! नहीं...उसका नाम न लो अब...[**गहरी साँस**]

मातंग—[विस्मय में] क्यों बात क्या है...पुरस्कार में आप उसे भी माँग लें...

त्रिलोचन—[दुःख की हँसी] ह...ह...ह...उसे तभी तक मेरे साथ रहना था जब तक यह मन्दिर बनता था...इसकी मूर्तियों में रामायण-महाभारत के आख्यान ढाले जा रहे थे...मेरे मन को वह तब तक गति देती रही जब तक मुझे इन मूर्तियों को गति देनी थी। मेरी छेनी का काम जब पूरा हो गया, वह चली गई [**स्वर भर आता है।**]

मातंग—कहाँ चली गई? एँ! कब? मैं तो नहीं जानता... इसीलिए कई दिनों से आपको उदास देख रहा हूँ...

त्रिलोचन—मातंग...! [**काँपते कण्ठ से**]

मातंग—जी...कहें...रोने लगूँगा मैं जो आप ऐसे कातर बनेंगे।

त्रिलोचन—बौद्धों के इन बारह गुहा-मन्दिरों को देखकर आचार्य कुमारिल ने कहा था...

मातंग—आप तो चुप हो जाते हैं...[**सहानुभूति के स्वर में**]

त्रिलोचन—हाँ...क्या कह रहा था मैं...[**जैसे नींद से जागा हो**]

मातंग—भूल गये अभी...? [**भय और विस्मय की मुद्रा**]

त्रिलोचन—हाँ...कहो क्या कह रहा था मैं...? [**स्वर क्रम से मन्द पड़ रहा है।**]

मातंग—जहाँ वह वितान है वहीं आचार्य कुमारिल ने क्या कहा था?

त्रिलोचन—मातंग ? चम्पकमाला मेरी स्मृति भी ले गई क्या? जहाँ वह वितान है वहीं कुमारिल भगवान ने कुछ कहा था ऐं! यही कह रहा था मैं तुमसे ? हाँ...हाँ...वहीं खड़े होकर जब उन्होंने शंख फूँक दिया और उनके जय-जयकार से जब दिशायें गूँज उठीं, उन बारह गुहा-मन्दिरों से निकल कर सौगत ऐसे भाग चले जैसे आँधी के आगे काले बादल भागते हैं। किसी सौगत में साहस नहीं हुआ कि उनसे शास्त्रार्थ करे।

मातंग—तब...चम्पकमाला का प्रसंग चल रहा था।

त्रिलोचन—भगवान कुमारिल ने कहा था...सौगतों के गुहा-मन्दिरों से भोली जनता ठगी जायेगी; इसलिए इसी जगह जहाँ उनके चरण पड़े थे, ऐसा मन्दिर बने जिसे देख कर देवता भी

विस्मत हों...जिसके जोड़ का दूसरा मन्दिर धरती पर न हो। जिससे दक्खिन की भूमि उसी प्रकार शोभित हो जैसे उत्तर की भूमि कैलासशृङ्ग से शोभा पाती है।

मातंग—कोई आ रहा है...आचार्य! राजमाता का स्वर... सुन रहे हैं आप कि नहीं?

भवनागा—[प्रवेश कर] यह कुमारिल की बात कह रहे हो प्रधान! धन्य हो तुम! तुम्हारा बनाया यह मन्दिर कोई न कहेगा कि मनुष्य के हाथ से बना है। जिस समय मैं देख रही थी, जैसे ऊपर विमान पर चढ़ कर देवता कह रहे थे...शंकर का यह मन्दिर स्वयं सम्भूत है, मनुष्य का कोई भी निर्माण इतना सुन्दर नहीं हो सकता।

त्रिलोचन— यहाँ आइये महादेवी! इस जगह से मन्दिर का एक भाग समूचा देख पड़ता है। हाँ, यहाँ से...मध्यमन्दिर के इस वितान का इतिहास आप जानती हैं।

भवनागा—हा...हा...हा...मेरे मुँह से सुनोगे शिल्पी! पहचानती हूँ मैं उस स्थान को। भट्ट कुमारिल उत्तराखण्ड से दिग्विजय करते इलापुर की पर्वतमाला में यहीं तीन दिन रुके रहे। उत्तर और पूर्व से प्रयाग, काशी, उज्जयिनी में बौद्धों को हराकर वे इलापुर आये।

त्रिलोचन—और आप महादेवी...?

भवनागा—मैं नहीं। मेरे नाम की एक चालुक्य राजकुमारी थी वह...जो...उन बातों को फिर दुहराऊँ मैं यही चाहते हो?

अच्छी बात तो फिर सुनो । तुम्हारी कोई भी कामना अपूर्ण न रहे । अपने विवाह-मण्डप से आर्यपुत्र के साथ भाग कर मैं भी यहीं आई...भट्ट कुमारिल के आने के दो घड़ी बाद...कर्मकाण्ड के पण्डित मीमांसा के अवतार उन भगवान् ने हम दोनों का विवाह यहीं कराया था ।

मातंग—ऐं...विवाह के पहले ही तब...

भवनागा—मेरा विवाह दूसरे के साथ होने वाला था । आर्यपुत्र चालुक्य राज्य के दूसरे सेनापति थे । साल भर पहले से मैं उन्हीं के मुख उनके युद्धों की कहानियाँ सुनती आई थी । फिर न जाने क्या हो गया कि जिस समय मैं विवाह-मण्डप में आने लगी, उनसे व्यंग्य में कह गई मैं...[मन्द हँसी]

त्रिलोचन—यह तो मैं भी नहीं जानता महादेवी ! क्या कहा आपने...[उत्सुक स्वर में]

भवनागा—विवाह-मण्डप से मेरे हरण का आख्यान जो मूर्तियों में ढाल दो तो फिर कहूँ...

त्रिलोचन—ढाल दूँगा मैं, कहें आप...

भवनागा—हाथ में खुला खड्ग लिये वे प्रधान रक्षक के रूप में मण्डप के द्वार पर खड़े थे । उनके कान में झुक कर मैंने कह दिया—इस मण्डप से मेरा हरण करो तब मैं समझूँ उन युद्धों की बात तुम सच कहते थे ।

त्रिलोचन—हे भगवान् ! तब देवी...[आग्रह का स्वर]

भवनागा—मेरी आँखों में देखा उन्होंने । उस समय मैं पल भर के लिये वैसी ही बन गई जैसी पार्वती बन गई हैं रंग-मण्डप में !

सखियाँ मुझे मण्डप में ले गईं। स्त्रियाँ गाने लगीं और पण्डित मंत्र कहने लगे...मन्दिर के द्वार पर मेरे मन की गति जो बनी थी, बनी रही! तब तक अपने पाँच सैनिकों के साथ वे मण्डप में घुसे, जैसे सिंह वन में घुसता है। बायें हाथ से मुझे उठा कर और दायें से खड्ग नृत्य करते वे द्वार के बाहर हो गये।

त्रिलोचन—चालुक्य राजकुमारों ने घेरा नहीं डाला?

भवनागा—आकाश में गरुड़ का और वन में सिंह का मार्ग कहाँ रुकता है? मुझे उसी तरह उठाये वे अश्व की पीठ पर जा बैठे। एक पहर तक पीछा करने वाले देख पड़े, फिर किसी का पता नहीं चला। यहाँ पहुँचने पर कुमारिल भगवान् यह सुन कर बहुत हँसे और कहा कि रुक्मिणी का हरण भी विवाह-मण्डप से ही हुआ था।

मातंग—हमारे शुभतुंग अकालवर्ष महाराज की वीरता की सबसे बड़ी परीक्षा यही हुई।

भवनागा—हैं...हैं...क्या कह रहे हो! बुद्धि कहीं चरने तो नहीं गई है तुम्हारी?

त्रिलोचन—यह महाराज नहीं...इनके बड़े भाई महाराज इन्द्रराज...

मातंग—नहीं जानता था मैं; क्षमा करें मुझे...युवराज दन्तिदुर्ग आपके...

त्रिलोचन—हाँ...रंग-मण्डप की छत में जो सहस्र-दल कमल बना है उसमें लाल रंग अभी भरना है...आज संध्या तक वह पूरा हो जाय। कह दो चित्रकार भैरव से...

मातंग—जो आज्ञा [**भय के स्वर में : प्रस्थान**]

भवनागा—कितने वर्षों पर यह संकल्प पूरा हुआ। तीन दिनों से देख रही हूँ पर अभी तक जैसे कुछ देखा नहीं। जिन मूतियों को देख कर आगे बढ़ी...मन वहीं उलझा रह गया और आगे कुछ जैसे देखा ही नहीं। रावण के उठाने से कैलास हिलने का दृश्य... क्या कहना है! पार्वती शिव को पकड़ लेती हैं और दासी भय में भाग चलती है। भूतनाथ मुस्करा उठते हैं...भय, विस्मय, हास्य और कौतुक की मुद्रायें सजीव हो उठी हैं।

त्रिलोचन—आठ वर्ष की आयु में...यहीं तो इस मन्दिर के निर्माण का संकल्प हुआ था। हाथ उठा कर जो मैंने कहा कि वह मन्दिर मैं बनाऊँगा...सब लोग हँस पड़े। याद है आपको...?

भवनागा—हाँ भद्र। उस समय तुम्हारा कहना चन्द्रमा पकड़ने के लिए बालक का मचलना था। संसार में जो अब तक नहीं देखा गया था तुमने दिखा दिया। और फिर पत्थर काटने का काम ब्राह्मण का है भी तो नहीं।

त्रिलोचन—भगवान् कुमारिल का आदेश भी तो यही था कि इस मन्दिर का प्रधान शिल्पी वह बने जो वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, काव्य और भरत की नाट्य-मुद्राओं का ज्ञाता हो। यह सब पहले पढ़ना पड़ा मुझे। आचार्य के श्रीचरणों में बैठ कर और जहाँ-जहाँ भेजा उन्होंने।

भवनागा—सेतुबन्ध से लेकर कुण्डल-वन तक...मथुरा, काशी, कामरूप तक सब मन्दिरों और मूर्तियों को देखना पड़ा तुम्हें।

त्रिलोचन—जन्म लेने का यही इतना फल मिला मुझे नहीं तो...[स्वर भारी हो उठता है]

भवनागा—अरे हाँ! ऐसे दुःख में क्यों देख रहे हो...भगवान् कुमारिल की कामना तुमसे पूरी हुई...समुद्र के भीतर से निकले प्रवाल-मन्दिर से भी सुन्दर तुम्हारा यह मन्दिर है...कल उपहारों का पहाड़ तुम्हारे सामने लग जायगा। कैलासनाथ की प्राण-प्रतिष्ठा तो होने दो!

त्रिलोचन—उपहार और धन की चाह अपने अकेले के लिए नहीं होती महादेवी! उसका भोग करनेवाला भी तो कोई नहीं! श्रुति का विधान जो भगवान् कुमारिल ने चलाया उसके अनुरूप इस मन्दिर का निर्माण किया है मैंने। सौगतों के वैराग्य पर कर्म और अनुराग की प्रतिष्ठा इस मन्दिर का लक्ष्य है। पर मैं किस सौगत से अच्छा हूँ? पत्थर काटने और मूर्ति गढ़ने से अधिक और क्या किया मैंने? यह कार्य तो बहुत कुछ मुझे इन्हीं सौगतों से सीखना पड़ा जो तक्षण-कला में पहले से ही निपुण थे। ठीक है...अपना-अपना भाग्य! कर्म की प्रेरणा के लिए इस मन्दिर को मूर्तियों को गढ़ना और स्वयं कर्महीन रहना दोनों की टाँकी मेरे ललाट में साथ ही लगी।

भवनागा—क्या कह रहे हो? सौगतों की इन बारह गुफाओं में कर्म और व्यवहार, भाव और मुद्रा का पता कहाँ? त्रिलोचन! तुम्हारी आँखें भर आई हैं?

त्रिलोचन—हा...हा...हा...जगत् और जीवन में जिनका

अनुराग नहीं था महादेवी ! जन्म लिया जिन्होंने केवल निर्वाण के लिये, किसी कर्म के लिए नहीं...वे भला मनुष्य के कर्म और भाव को क्यों देखते । पर इस सारे कर्म का फल मुझे भी तो वही निर्वाण...

भवनागा—पर क्या वे कर्म और भाव से बचे रहे ? क्या दुःख है तुम्हें ? तुम्हारी यह दशा क्यों है ?

त्रिलोचन—कर्म के नाम पर उनकी संगठित भिक्षा चली । भिखमंगों की सेना जिस गाँव में उतर पड़ी...धड़ा-धड़ किवाड़ बन्द हो गये । युवतियाँ कभी-कभी इनके भय से कूएँ में कूद पड़ीं । गृहस्थ अपने घर में जो कुछ करता है, विहारों और गुहा-मन्दिरों में इन्होंने वह सब किया...केवल उस बाँध को नहीं माना जो गृहस्थ मानता है ।

भवनागा—हूँ...यह सब ठीक है । अपनी बात कहो और कुछ नहीं...तुम दुखी हो ! जब से घर छोड़ा फिर कभी नहीं गये । इसीलिए न ?

त्रिलोचन—कभी नहीं...इस मन्दिर के स्वप्न में शास्त्र-पुराण, काव्य, आख्यान पढ़ने में पहले बारह वर्ष बीत गये । दस वर्ष विन्ध्याचली अष्टभुजा की छाया में पत्थर काटते बीते । सात वर्ष यहीं हो गये और इसके पहले के तीन वर्ष अकालवर्ष राजाधिराज परमेश्वर कृष्णराज का सेवक बन कर राजधानी में ।

भवनागा—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है । राजर्षियों को इसी आयु में सन्तान हुई । सात वर्ष पहले जो चम्पकमाला तुम्हारे

मनोविनोद के लिए यहाँ भेजी गई, कुछ यही अर्थ था उसका... अरे ! दया करो मुझ पर शिल्पी ! मुँह फेर कर आँसू पोंछ रहे हो तुम ! किसी ने तुम्हारा अपमान किया हो तो वह इस धरती पर नहीं रहेगा । क्या अभाव तुम्हारे भीतर इस तरह कचोट रहा है ?

त्रिलोचन—महादेवो...! [**भरे कण्ठ से**]

भवनागा—हाँ...हाँ...कहो...लो, फिर चुप हो गये ?

त्रिलोचन—मेरी बना कर वह यहाँ भेजी गई थी ? सच मान लूँ मैं इसे ?

भवनागा—और क्या ? नहीं तो समझो इस आयु में मैं झूठ कह रही हूँ। सात वर्ष की अवधि के लिए जो स्त्री किसी पुरुष की सेवा में भेजी जायेगी...यह जान कर कि उस पुरुष की कोई पत्नी नहीं है...आयु से भले न हो पर मन और तन दोनों से जो अभी किशोर है...राजभवन में जिसका जन्म और पालन हुआ... मेरी प्रधान प्रतिहारी की कन्या...संगीत और साहित्य की शिक्षा जिसे राजकुमारियों के साथ दी गई । सब ओर से तुम्हारे योग्य मान कर तुम्हारी सेवा को मैंने ही उसे भेजा था ।

त्रिलोचन—भाव और मुद्रा के अंकन में मुझे उससे बराबर प्रेरणा मिली है ।

भवनागा—फिर भी तुमने उसका अपमान किया ? उसे स्वीकार नहीं किया ?

त्रिलोचन—इस कैलासनाथ के प्रधान शिल्पी का धर्म तपस्या

छोड़ कर कुछ और भी था महादेवी? देख रही हैं ऊपर पिण्ड में एक सीध में बनो उन मूर्तियों को जो महर्षि वात्स्यायन के कामसूत्र पर बनाई गई हैं। त्रिलोचन शिल्पी नहीं रहा हूँ मैं पिछले सात वर्ष...मैं स्रष्टा रहा हूँ महादेवी! और यह मन्दिर मेरी सृष्टि है।

भवनागा—प्रेम और रति की मूर्तियों में जो सृष्टि के उद्गम की लीला और आनन्द को इस तरह मूर्त कर सका; प्रकृति के सम्पूर्ण जीवन की गति, इस मन्दिर के ढाँचे में जिसने खड़ी कर दी, वही उस सुख से वंचित रहा—साधन रहते भी...?

त्रिलोचन—उस विकार में पड़ जाने पर मैं यह निर्माण कर पाता? और उसका प्रभाव दूसरे शिल्पियों पर क्या होता? मोहिनी के लिए कभी देवासुर संग्राम छिड़ा था। भूल गईं क्या आप उसे?

भवनागा—चुप रहो शिल्पी। नर-नारी का प्रेम जो विकार है तो फिर राम और कृष्ण ने कैसे जन्म लिया? बुद्ध ने भी जन्म लिया और दिया भी था। भगवान् कुमारिल भी उसी विकार के फूल थे।

त्रिलोचन—मेरे लक्ष्य पर सन्देह न करें महादेवी! इस धरती पर सबसे सात्विक कर्म पति-पत्नी का प्रणय है, जिसका फल है सन्तान। जिस फल के लिए दिलीप और दशरथ ने तपस्या की। जिस प्रेम का फल सन्तान है वह जगत का सबसे पवित्र कर्म है। प्रकृति का धर्म मारा नहीं जाता। प्रेम तो सौगतों ने भी किया, केवल उसके फल से भागते रहे।

भवनागा—तब तुम कैसे विकार में पड़ते ?

त्रिलोचन—जितने शिल्पी थे यहाँ...पाँच सहस्र...पत्थर काट कर हटाने वालों को छोड़ भी दें फिर भी सात सौ जो मेरे मानचित्र के अनुसार मूर्तियाँ गढ़ते रहे हैं...जिनका मैं समाधान करता रहा हूँ...उन सब को एक-एक सुन्दरी की चाह होती तब...और तब क्या होता इसे आप सोच लें ?

भवनागा—सबके सामूहिक मनोरंजन के लिए पाँच नर्तकियाँ यहाँ नित्य नाचती-गाती रही हैं...शिल्पियों को श्रम न खले... उनका मन न उचटे काम से...भोजन और संगीत दोनों से तुष्ट रहें वे...इसकी चेष्टा हम लोग बराबर करते रहे हैं। वस्त्र और औषध का प्रबन्ध भी उचित रहा है।

त्रिलोचन—फिर भी हम शिल्पियों का एक समाज रहा है... सबके अधिकार समान थे इसलिए सुविधा भी समान थी। मेरे मन पर जो अंकुश न रहता तो फिर जो दूसरे तरुण शिल्पी हैं, उनकी दशा क्या होती ? आचार्य कुमारिल को प्रेरणा का बल लेकर भी जो मैं उस आँख से चम्पकमाला को देख लेता तब मैं स्रष्टा के आसन से गिर पड़ता और यहाँ पृथ्वी का शृङ्गार यह मन्दिर न होता...यहाँ होता प्रलयका ध्वंस और अभावग्रस्त शिल्पियों का उन्माद !

भवनागा—अच्छी बात...अपने साथियों के विचार से उसके साथ तुमने प्रेम नहीं किया। पर वह रही तो तुम्हारे साथ...उसकी जलन भी हुई होगी उन्हें।

त्रिलोचन—वह जब आ गई...कुछ दिन उसके कण्ठ और वीणा के स्वरों में डूब कर मेरी छेनी और शलाका चलती रही...मेरे साथ दूसरे कर्मी भी वहाँ रहते थे। पर जब मैंने देख लिया इस प्रकार अवधि के भीतर मन्दिर नहीं बन पायेगा, तरुण शिल्पी आँख चुरा कर उसकी ओर देखते रहेंगे; मूर्ति का रूप उनके मन का केन्द्र न रहेगा; उसकी जगह उसका रूप आ बैठेगा तब मैं भविष्य की संभावना से डर गया।

भवनागा—उसके रूप से तुम डर गये ? [विस्मय का स्वर]

त्रिलोचन—भविष्य की सम्भावना से...सात दिन भी उसके अभी यहाँ नहीं पूरे हुए थे कि एक दिन सवेरे, वितान के ऊपर वह जो कमल बना है, अभी उसका आधार बना था; पंखुड़ियाँ कोरनी थी, उसी पर चम्पकमाला को बैठा कर मैंने उसके ललाट पर चन्दन का तिलक देकर उसके सिर पर फूल चढ़ा कर उसको नमस्कार कर कहा—जब तक इस मन्दिर का निर्माण हो रहा है, तुम मेरी सरस्वती बन कर मेरी कला को गति दो। फिर क्या था... सभी प्रधान शिल्पी सरस्वती के भाव से उसकी पूजा करने लगे। यह कार्य नित्य हुआ, केवल स्थान बदलता रहा।

भवनागा—[विस्मय में] स्थान क्यों बदलता रहा ?

त्रिलोचन—मन्दिर का निर्माण ज्यों-ज्यों नीचे आता गया, हमारी सरस्वती का आसन भी उतरता आया। जहाँ कहीं भी मन्दिर बने होंगे सभी नीचे से ऊपर को बने होंगे पर इस मन्दिर का अधिक भाग ऊपर से नीचे को बना है। पहले वितान के ऊपर

का कमल, फिर वितान, वितान की मूर्तियाँ, फिर उसके नीचे मध्यपिण्ड, जिस पर रति-रंग और प्रणय-विलास की मूर्तियाँ... इसी प्रकार नीचे आधार और उनकी मूर्तियाँ जिनमें सिंह, हाथी और दूसरे जीव अपने स्वाभाविक व्यापार में लगे हैं।

भवनागा—वन के जीवों के जितने व्यापार, युद्ध, भय, स्नेह आदि हैं सभी तो सजीव हो उठे हैं। सिंह कहीं हाथी को फाड़ रहा है, कहीं हाथी की सूँड़ में छटपटा रहा है।

त्रिलोचन—शब्दों से इस मन्दिर का वर्णन नहीं हो सकता महादेवी! यह दृश्य काव्य है जिसमें रूप और रंग है पर शब्द नहीं। आँखें इसे देखेंगी...शब्द कह न पायेंगे।

भवनागा—सो तो मैं देख चुकी। आँखें जितनी बार इसे देखेंगी...हर बार इसका रूप और सम्मोहन नया होगा।

त्रिलोचन—सौन्दर्य वही है जो हर पल नया लगे और कला उसे कहेंगे महादेवी! जिसका रस कभी पुराना न हो। नित-नूतन है जो वही कला है, वही सौन्दर्य भी है।

भवनागा—कहाँ है वह तुम्हारी सरस्वती? देखूँ उसकी कला, वह है कि नहीं और वह रूप भी जिसे देखे सात वर्ष हो गये...

त्रिलोचन—जी वह तो...[**गहरी साँस लेता है।**]

भवनागा—कहाँ है बताओ...बोलो कहाँ है? अरे तुम तो मुझे...

त्रिलोचन—यहाँ नहीं है...जब तक यह मन्दिर बनता रहा... पूरे सात वर्ष मेरी पूजा के लिए वह रुकी रही। जब यह पूरा हो गया...उसकी पूजा छूट गई। दूसरे ही दिन वह चली गई। जानता तो उसकी पूजा न छोड़ता।

भवनागा—[उत्सुक होकर] कहाँ चली गई..! चुप रहोगे, अपनी देह की कन्या-सी उसका पालन किया था मैंने त्रिलोचन! कहाँ फेंक दिया तुमने उसे!

त्रिलोचन—मैं नहीं जानता...[दुःख का स्वर]

भवनागा—तुम नहीं जानते फिर कौन जानेगा? उसकी रक्षा का भार तुम पर था...यह क्या कह रहे हो तुम?

त्रिलोचन—मन्दिर-प्रवेश कल हो जाने दीजिये। यज्ञ और उत्सव कल हो जाय तब पूछिये।

भवनागा—तुम बड़े सन्देह में डाल रहे हो त्रिलोचन! मेरे अधिकार की ओर देखो...मेरी मर्यादा का चेत करो। [कठोर स्वर और मुद्रा]

त्रिलोचन—शिल्पी को भी मर्यादा होती है महादेवी! पत्थर के इस मन्दिर के निर्माण में मेरे भीतर जो भाव का मन्दिर था वह ढह गया। आप मुझे अधिक उत्तेजित करेंगी तो उस विमान-कमल से मैं नीचे कूद पड़ूँगा...विमान-कमल से साठ हाथ नीचे पत्थर पर...सुन रही हैं महादेवी आप! यह मन्दिर रहेगा, इसका शिल्पी चला जायेगा। कल तक का अवसर दीजिये मुझे...फिर इस अधम का मुख आप न देख पायेंगी।

भवनागा—श्रीभवन चलना है तुम्हें...राजधानी...तुम्हारी कला का प्रसाद न पायेगो!

त्रिलोचन—मेरी कला मर गई महादेवी! मैं भी मर गया। यह जो आप देख रही हैं मेरा प्रेत है। अनुराग और कर्म के जिस

समुद्र की लहरों से यह मन्दिर बना है वह सूख गया। जल की जगह वहाँ धू-धू कर रही है आग...आग...

[नेपथ्य में कोलाहल—बचाओ...बचाओ...शिल्पी...तुम्हारी दासी...]

त्रिलोचन—[भरे कण्ठ से] कौन....मेरी सरस्वती...

चम्पकमाला—मन्दिर बन गया है शिल्पी...मैं तुम्हारी दासी चम्पकमाला...

दन्तिदुर्ग—[प्रवेश कर] कहाँ जायेगी भाग कर अब...सिंह की प्रिया की ओर स्यार नहीं देखता शिल्पी !

त्रिलोचन—दूर रहो युवराज...छूना मत उसे...

भवनागा—दन्तिदुर्ग !

दन्तिदुर्ग—माँ...यहाँ...

भवनागा—हाँ...देख लो—आँखें खोल कर देख लो अपनी माँ को। तुम्हारी मर्यादा मुझसे बड़ी है शिल्पी ! क्षमा करो मुझे ! जो बात तुम्हें डंके की चोट कहनी थी उसे तुम पी गये, जैसे शिव ने कालकूट पी लिया था। एँ ! यह तो मूर्च्छित है...भेजो...कोई वैद्य भेजो यहाँ...[वहीं बैठ कर उसे गोद में बैठाने की चेष्टा करती है। दूर से आती यज्ञ के मन्त्रों की ध्वनि। बीच-बीच में शंख और भेरी का नाद।]

भवनागा—चम्पकमाला !...चित्त कैसा है अब...कहो कुछ...

चम्पकमाला—ठीक है महादेवी ! यही संयोग था...आप चिन्ता न करें।

भवनागा—तुम भी अब चिन्ता छोड़ दो। चलो, देखो मन्दिर का आँगन कोना-कोना दर्शकों से भरा है दक्षिण के सभी राजा और माण्डलीक तो प्रतापी राष्ट्रकूट-नरेश के प्रताप से आते ही, कामरूप और गौड़ के युवराज आये हैं; उत्तर की महोदयापुरी के महामन्त्री भी पधारे हैं।

चम्पकमाला—कोई आया हो महादेवी...किसी उत्सव में किसी कौतुक में मुझे न जाना चाहिये। सब ओर से उँगलियाँ उठेंगी। मन्दिर की सरस्वती का अपहरण महादेवी...फिर भी यह मन्दिर खड़ा है...अभी गिरा नहीं ?

भवनागा—आज के उत्सव में, सात वर्षों के श्रम और तपस्या का फल है जो, तुम्हें एक बार फिर सरस्वती बन कर अपने शिल्पियों में प्राण फूँकना है।

कृष्णराज—[प्रवेश कर] महादेवी ! अब क्या होगा ?

भवनागा—[भय में] क्या बात है भद्र !

कृष्णराज—शिल्पी मन्दिर छोड़ कर जा रहे हैं...उपहार और वेतन भी छोड़ कर...देश भर के राजाओं और माण्डलीकों में युवराज दन्तिदुर्ग के आचरण की बात फैल गई है। अपनी बात क्या कहूँ... इस मन्दिर की मर्यादा के साथ मेरे पूर्वजों की मर्यादा मिट रही है। [**गहरी साँस...दुःख का स्वर**]

भवनागा—और प्रधान शिल्पी त्रिलोचन ?

कृष्णराज—वह बेचारा ज्वर में पड़ा है, वैद्य कह रहे हैं उसकी नाड़ी में सन्निपात के पूर्व लक्षण हैं।

चम्पकमाला—[दुःख के स्वर में] सात वर्षों में, जिसे कभी

सिर में पीड़ा भी नहीं हुई, उसकी अवधि इस मन्दिर के निर्माण की अवधि तक थी।

कृष्णराज—चम्पकमाला !...अपने राजकुल की मर्यादा तुम बचा सकोगी।

चम्पकमाला—किस प्रकार...महाराज !

कृष्णराज—शिल्पियों को लौटा कर...

चम्पकमाला—तो वे सचमुच चले गये अपने नायक को छोड़कर ?

कृष्णराज—मन्दिर के उत्तर जहाँ जल-प्रवाह है, वहीं त्रिलोचन ज्वर में पड़े हैं...

चम्पकमाला—प्रवाह के उस पार...?

कृष्णराज—इसी पार...

चम्पकमाला—हूँ...जहाँ खड़ी होकर प्रवाह की गति में मैं अपनी गति मिला रही थी...युवराज ने जहाँ से मेरा अपहरण किया... प्रधान शिल्पी उसी स्थान पर प्राण छोड़ना चाहते हैं। शिल्पी चले गये नहीं तो आज संध्या तक एक मन्दिर का शिखर वहाँ भी बन जाता...[**काँपते स्वर में**]

कृष्णराज—त्रिलोचन को सब ओर से घेर कर शिल्पी वहीं बैठे हैं आसन मार कर।

चम्पकमाला—इस मन्दिर में शिव की मूर्ति के चारों ओर जैसे उनके गण बैठे हैं...

कृष्णराज—कुसमय में हँसी सूझ रही है तुम्हें...?

चम्पकमाला—आग बुझने के पहले जब जल समाप्त हो जाता है, लपटें और ऊँची उठती हैं...कभी-कभी वही हँसी बन जाती है। शिल्पी मातंग आ रहे हैं।

मातंग—[प्रवेश कर] शिल्पी निवेदन करते हैं महाराज...

कृष्णराज—हाँ...हाँ...कहो भद्र ! उनकी सारी कामनाएँ मैं आज पूरी करूँगा । प्रधान ! अपने नायक की दशा कहो !

मातंग—राजवैद्य ने नाक और कान में जब से दवा डाली और कनपटी चीर कर काला रक्त निकाला, उन्हें धीरे-धीरे चेत आ रहा है...ज्वर भी उतार पर है...रह-रह कर हमारी सरस्वती का नाम ले रहे हैं । शिल्पियों का निवेदन है आप इन्हें वहीं जाने दें ।

भवनागा—मैं भी चलूँ शिल्पी ! तुम्हारे साथी मेरा अनादर तो न करेंगे ?

मातंग—केवल हमारी सरस्वती वहाँ चलें ! शिल्पी इनकी पूजा एक बार और करेंगे । वे कह रहे हैं—मन्दिर के निर्माण की मूल शक्ति यही रही हैं । अब उन्हें क्या करना है इसकी मूल शक्ति भी यही बनेंगी ?

चम्पकमाला—मेरा आदेश शिल्पी अब भी मानेंगे...जो कुछ निकल जाय मेरे मुख से उसका आदर करेंगे वे ? अकेले न कहो... पूछ आओ सबसे, क्या कहते हैं ?

मातंग—हमारे नायक शिल्पी त्रिलोचन पर दया करो सरस्वती... तुम्हारे निकट उन्हें चेत जल्दी आयेगा ।

चम्पकमाला—सरस्वती की बोली बोल कर जिस दिन उन्होंने मेरे सिर पर फूल चढ़ाया उस दिन उनको दया कहाँ गई थी ? जाओ पूछ आओ और लोग क्या कहते हैं ?

कृष्णराज—एक बात पूछनी है मातंग !...गंगा, यमुना की तीन मूर्तियाँ बनी हैं मन्दिर के आयतन में !...

मातंग—हाँ...तीसरी में कमल पर सरस्वती भी हैं...सिन्धु और ब्रह्मपुत्र छोड़ दिये गये हैं। प्रधान शिल्पी को भगवान् कुमारिल ने आदेश दिया था; इन नदियों की मूर्ति बनाने को यहाँ...जिनकी गति में समूचे देश और जीवन की गति है।

कृष्णराज—महोदया के महामन्त्री को इन मूर्तियों में राजनीति की गंध आ रही है।

मातंग—इसलिए कि इस समय ये नदियाँ उनके राज्य की सीमा में हैं। राष्ट्रकूट की विजयलक्ष्मी कभी प्रयाग के पार महोदया तक पहुँचेगी; भविष्य का संकेत इन मूर्तियों में है। गंगा का वाहन मकर है, यमुना का कूर्म, सरस्वती कमल पर हैं।

कृष्णराज—अच्छा तुम जाओ...[**मातंग का प्रस्थान**] दन्तिदुर्ग से यह क्या हो सकेगा ? महादेवी...राष्ट्रकूट राज्य में गंगा और यमुना की कल्पना इस मन्दिर की मूर्तियों में है...इसे सत्य करने के लिये हमें त्याग करना पड़ेगा।

चम्पकमाला—प्रधान शिल्पी ने अपने हाथों इन मूर्तियों को बनाया...मैंने पूछा था तभी इस राज्य के बाहर ये नदियाँ हैं... हँस कर बोले—इस निर्माण में तुम्हारी वीणा ऐसी बजे जैसी कभी न बजी हो। प्रयाग के त्रिवेणी-संगम से जब तक इस मन्दिर का सम्बन्ध नहीं होता, इसके निर्माण का फल अधूरा रहेगा।

कृष्णराज—त्याग करना है इस पूरे फल के लिए महादेवी हमें !

भवनागा—डर रही हूँ मैं तुम्हारी इस बात से...कह दो क्या त्याग करना होगा हमें...

कृष्णराज—करेंगी आप...

भवनागा—हाँ...कहो !

कृष्णराज—फिर कहें करेंगी ?

भवनागा—करूँगी...

कृष्णराज—एक बार और कहें करेंगी ?

भवनागा—त्रिवचन ले रहे हो...तो ले लो...करूँगी !

कृष्णराज—रमणी के रूप का सम्मोहन जिस पर चढ़ेगा, उसकी आँखों के बाण जिसके हृदय को बेध देंगे वह राजकुमार राष्ट्रकूट-सिंहासन का अधिकारी न होगा...सुन रही हैं !

भवनागा—[काँप कर] दन्तिदुर्ग के आचरण का न्याय है यह... फिर आज ही इसी मन्दिर में इसकी घोषणा हो जाय ?

कृष्णराज—दन्तिदुर्ग के आचरण का न्याय शिल्पियों की सरस्वती करेंगी। मेरे कुल में जन्म से बड़ा होना सिंहासन का अधिकारी नहीं बनायेगा। दन्तिदुर्ग ने चालुक्य शक्ति को धरती पर गिरा दिया है...वीर है वह, विजयी भी है। राजाधिराज परमेश्वर का विरुद पाकर भी वह अब हमारे सिंहासन पर नहीं बैठेगा।

मातंग—[प्रवेश कर] आपका आदेश शिल्पी सिर-आँखों पर उठा लेंगे सरस्वती...

चम्पकमाला—तब चलो भद्र ! पर कहीं मेरा विश्वास करना शिल्पियों को महँगा न पड़े ! [प्रस्थान]

कृष्णराज—यह कन्या पाँच सहस्र शिल्पियों की सरस्वती बन गई...भाग्य और संयोग की बात है यह...

भवनागा—दन्तिदुर्ग युद्धों में विजय लेकर भी जीवन में हार गया। अकेले उस एक के आचरण का फल हमारे कुल के सभी जेठ कुमारों को भोगना पड़ेगा।

कृष्णराज—ऐसी बात तो नहीं है, बड़े-छोटे का भेद न रहेगा। युद्ध के विजय से कोई विजयी भी न रहेगा। रमणी के आकर्षण को जीतना होगा देवी पहले! तभी गंगा और यमुना हमारी सीमा में आ सकेंगी।

भवनागा—तुम्हारे कुल में राजकुमार की दो स्त्रियाँ न होंगी अब......यही न?

कृष्णराज—पाँच या और भी हो सकेंगी। किसी राजनैतिक लाभ के लिये...पर हाँ, राजकुमार का मन जहाँ चल जाय यह बात न हो...राष्ट्रपति, विषयपति, राज्यपरिषद् की राय से। जिस विवाह के लिये वे मन्त्र दें...

दन्तिदुर्ग—[प्रवेश कर] अपने आचरण की रक्षा के लिए मैं यहाँ नहीं आया हूँ।

कृष्णराज—तब किस लिए? चालुक्य-विजयी राजाधिराज परमेश्वर दन्तिदुर्ग कुछ कहना चाहेंगे अब भी...

दन्तिदुर्ग—अन्तःपुर की, वह भी कुलीन प्रतिहारी की कन्या क्या राजकुमार नहीं ग्रहण करते? मेरी बारह वर्ष की आयु चम्पक के साथ खेल कर नहीं बीती...? फिर भी मुझे उसकी चिन्ता न होती जो मैं अपनी आँखों न देख लेता कि वह यहाँ आग में जलाई जा रही है।

कृष्णराज—महादेवी ! क्या कह रहे हैं कुमार...[कठोर स्वर]

दन्तिदुर्ग—सुन लीजिये जो मैं कहता हूँ...सोलह वर्ष की आयु में चम्पक यहाँ भेजी गई...सात वर्ष तक नित्य सवेरे शिल्पी सरस्वती का नाम देकर उसकी पूजा करते रहे। जैसे वह भी इन मूर्तियों की भाँति कोई पत्थर की मूर्ति थी...जैसे उसके हृदय में धड़क नहीं थी...उसकी आँखों में आग्रह नहीं था...उसकी साँस में आग नहीं थी। सात वर्ष जो पाषाण-प्रतिमा-सी पूजी गई... पत्थर की मूर्ति को जैसे लोग आसन पर सजा कर रख देते हैं... अभागा शिल्पी त्रिलोचन उसे इसी प्रकार सजा कर चौकी पर लिटा देता था और नीचे धरती पर कई शिल्पियों के साथ सो रहता था। सवेरे वह उठती थी...पूजा कराने के लिए...सारा दिन पहाड़ पर कहीं यहाँ, कहीं वहाँ...आकाश से टूट कर जैसे कोई तारिका गिर पड़ी हो...जिसकी अपनी कोई जगह न हो...कोई लक्ष्य भी न हो।

भवनागा—तुमने उसे जाना नहीं...कमलिनी को कीचड़ से उखाड़ कर तुमने गंगा में रोप दिया...जहाँ वह सूख गई।

दन्तिदुर्ग—हाँ...वाराह ने धरती का उद्धार किया था जैसे, मैंने भी उसका उद्धार करना चाहा...पर वह शिल्पी त्रिलोचन पर पहले से ही अनुरक्त थी और मन्दिर के निर्माण का दिन दोनों देख रहे थे...यह मुझे अब पता चला है।

कृष्णराज—त्रिलोचन के साथ वह अकेले कभी नहीं रही ?

दन्तिदुर्ग—कभी नहीं...शिल्पियों को किसी प्रकार का सन्देह न हो इसलिए नित्य रात को वह चार शिल्पियों को अपने साथ

सोने के लिए बुला लेता था। हर रात नये शिल्पी उसके साथ सोते थे। सौगत शिल्पी जो अपने विधान के विरुद्ध इस काम में पकड़ कर लगा दिये गये थे...उन्हें भी प्रधान के साथ चम्पक की चौकी के नीचे सोना पड़ा।

कृष्णराज— यह सब उसी ने कहा तुमसे...

दन्तिदुर्ग—चालुक्य-विजय के बाद जब मैं लौटा था...उसकी प्रातः पूजा अपनी आँखों देखा। उसे देख कर विस्मय होना स्वाभाविक था। तीन दिन-रात कब क्या होता है सब देखता रहा मैं, फिर चला गया। पिछले साल छः वर्ष बाद लौटा... बराबर के युद्धों से अवसर कहाँ मिला मुझे। सोचा था चम्पक अब माँ बन गई होगी...पर यहाँ आने पर वही चम्पक और उसकी वही दिनचर्या...प्रवाह के निकट उससे पूछ भी बैठा मैं—कहो जी, पत्थर में प्राण डालने के लिए यहाँ प्राण पत्थर बनाया जा रहा है?

कृष्णराज—[विस्मय में] क्या कहा उसने तब...

दन्तिदुर्ग—युद्ध नहीं है युवराज! यह...कला है...इसमें प्राण कभी पत्थर बनता है, कभी माखन, कभी आग और कभी पानी... उसकी भावहीन आँखों में मृत्यु की छाया देख पड़ी मुझे...फिर भी जब तक मन्दिर बन रहा था...मैं चला ही गया।

कृष्णराज—हूँ...तो उसके उद्धार की बात तभी तुम्हारे मन में जम गई...

दन्तिदुर्ग—मन में आया इस अभागे शिल्पी का सिर काट लूँ...

वहाँ भी मन्दिर के अनिष्ट का भय देख पड़ा । इस बार मन्दिर बन जाने पर आया...सवेरे उसकी पूजा तो नहीं हुई पर त्रिलोचन उसकी चौकी के किनारे नीचे उसी प्रकार शिल्पियों के साथ पड़ रहा । अब मुझे विश्वास हो गया कि चम्पक कदाचित् इसी भूमि में देवदासी बनाई जायेगी...नहीं तो प्रधान शिल्पी मन्दिर पूरा हो जाने पर भी तो उसका विचार करता !

भवनागा—वह बेचारा आज के दिन की प्रतीक्षा कर रहा था...जब वह अन्य उपहारों के साथ उसे भी पाता ।

दन्तिदुर्ग—यह तो जान गया मैं अब तो...पर मैं भी उसके रूप के मोह में पड़ कर नहीं, दया के कारण...[**गहरी साँस**]

कृष्णराज—राजाधिराज परमेश्वर दन्तिदुर्ग को दया से भी नहीं हारना था । राजनीति में दया कभी कायरता है तो कभी लम्पटता । शुद्ध दया उसके लिए नहीं है जो राजा है ।

दन्तिदुर्ग—मैं अभी युवराज था...

कृष्णराज—हम लोगों के लिए...अपनी माता और चचा के के लिए...दूसरी राजधानियों में सब तुम्हें राजा जानते थे । राजाधिराज का विरुद तुम्हारा सब ओर चल पड़ा था ।

दन्तिदुर्ग—कोई बात नहीं । शिल्पी उपहार और वेतन के पहले मेरे आचरण का न्याय माँग रहे हैं...यह अधिकार उन्हीं शिल्पियों को दे दिया जाय...देखें क्या दण्ड देते हैं मुझे...

कृष्णराज—चल रहा हूँ मैं शिल्पियों की ओर...इन्हें लेकर आप भी आइये...हाँ, यह पूछ लीजिये इनसे चम्पक को अब ये किस भाव से देखते हैं ?

[प्रस्थान]

भवनागा—कितने दिन रही वह तुम्हारे शिविर में...

दन्तिदुर्ग—तीन दिन...

भवनागा—रात को...

दन्तिदुर्ग—रात को भी...शिविर में हम दो थे...सैनिक बाहर...

भवनागा—तब तो अब...[दोनों हाथों से सिर पीट लेती हैं।]

दन्तिदुर्ग—उसने जाते ही कह दिया कि वह त्रिलोचन में अनुरक्त है। सात वर्ष की तपस्या पर उसे वह लाभ मिलने वाला है जो पार्वती को भी तपस्या पर ही मिला था। वह अपने को पार्वती कहने लगी और शिल्पी को शंकर...एक बूँद जल भी नहीं लिया उसने मेरे शिविर में। चम्पक के लिए शिल्पी शंकर है! और मैं उसके पैर की धूल भी नहीं।

भवनागा—सच कहते हो। तुम्हारी शपथ लेकर मैं शिल्पी को उसकी पवित्रता का विश्वास दिलाऊँगी।

दन्तिदुर्ग—मेरे शब्द और आचरण के साक्षी भगवान् भास्कर आकाश से देख रहे हैं। इस प्रवाह के किनारे उसे पकड़ कर अश्व पर चढ़ा था मैं...रास्ते भर आगे बैठा कर उसे पकड़े रहा...पर शिविर में जो उसका स्पर्श भी किया हो तो मेरे नख गिर पड़ें।

भवनागा—तब तो वह अभी शिल्पी के योग्य है।

दन्तिदुर्ग—सब ओर से माँ! माँ से अपना पाप भी कह देते हैं लोग। चम्पक किसी भी शुद्धान्त की कुमारी से कम पवित्र नहीं है।

भवनागा—तब फिर चलो...राष्ट्रकूट सिंहासन तुमसे छूट गया...

दन्तिदुर्ग—[नेपथ्य में-जाते-जाते] जानता हूँ...

०::—::—

दूसरा दृश्य

त्रिलोचन—[निर्बल स्वर] युवराज ने तुम्हारा उद्धार करना चाहा जैसे वाराह ने पृथ्वी का उद्धार किया था।

चम्पकमाला—मेरी बातों में जो तुम विश्वास कर सको शिल्पी ! जन्म-जन्म के जो कुछ पुण्य अभी बचे हों उनकी शपथ से कह रही हूँ...जिस समय सुन लिया कि तुम मेरे शंकर और मैं तुम्हारी पार्वती हूँ, कटे पेड़-से शिविर में गिर पड़े।

त्रिलोचन—तीन दिन...हाँ तीन दिन...

चम्पकमाला—कुछ सूझता नहीं था उन्हें, क्या करें...अन्त में अपने आचरण का समूचा फल भोगने के लिये मुझे अकेले आने देना न मान कर...मेरे साथ नन्दी मण्डप पर चढ़े और वह अभिनय प्रेम का किया उन्होंने कि सब उन्हें अपराधी मान लें।

त्रिलोचन—तीन दिन चम्पकमाला ! कौन मानेगा कि तुम बच निकली ?

चम्पकमाला—ठीक; तुम भी न मानो। स्त्री अपनी पवित्रता बचा सकती है...जब राम ने नहीं माना तो फिर दूसरा कौन मानेगा और तुम भी कैसे मानोगे ? युवराज से सिंहासन छूट गया...

प्रतापी राष्ट्रकूट सिंहासन...मुझ अभागिनी के मन में यह क्या हो रहा है !

त्रिलोचन—आचार्य कुमारिल का संकल्प मुझसे पूरा हुआ... उसके साथ ही मेरी कामनाएँ भी पूरी हो गईं। मुझे कुछ न चाहिए अब...मेरे भाग में जो नहीं था उसकी चाह अब क्यों हो !

चम्पकमाला—तब तुम मुझे स्वतन्त्र कर रहे हो। चाह कर भी मैं तुम्हारी न बन सकी...जानते हो क्यों ?

त्रिलोचन—नहीं तो...[**उद्वेग और विस्मय का स्वर**]

चम्पकमाला—रंग-मण्डप में पार्वती के अंगों का निर्माण तुमने मुझे देख कर किया था...महामाहा ने युवराज को प्रेरित कर तुम्हारी रक्षा की। आप लोग आयें यहाँ बुला रहे हैं शिल्पी ! क्या न्याय चाहते हैं आप लोग ? महादेवी और युवराज भी आ गये।

दन्तिदुर्ग—मेरे आचरण का न्याय धरती के शृङ्गार कैलास-मंदिर के शिल्पीजन करें। किसी भी प्रकार का दण्ड मुझे स्वीकार होगा।

चम्पकमाला—कहें आप लोग क्या चाहते हैं ?

मातंग—युवराज के आचरण का न्याय हमारी सरस्वती करें... सब यही चाहते हैं।

चम्पकमाला—जब तक मन्दिर बनता रहा तभी तक मैं आप की सरस्वती रही। अब मैं श्रीभवन के अन्तःपुर की कुमारी चम्पकमाला हूँ। क्या मेरे उस रूप को यह अधिकार देंगे आप लोग...

कई स्वर—हाँ...हाँ...स्वीकार है।

चम्पकमाला—तब आप लोग इस मन्दिर के निर्माण का पुरस्कार और वेतन लेकर चले जायँ। आज से यह भूमि अभिशापित हुई...यहाँ फिर कभी कोई निर्माण न हो...कम से कम आपके हाथों नहीं। युवराज अपने पूर्वजों का सिंहासन और राज्य छोड़ कर अन्यत्र चले जायँ।

त्रिलोचन—और मैं...[**भरे कण्ठ से**]

चम्पकमाला—हा...हा...हा...तुम प्रधान...तुम इसी पर्वत के अंग बन जाओ। तुम्हारा प्रेत इसी कैलास-मन्दिर के विमान-कमल में बन्द रहे...जब तक यह मन्दिर रहे।

[उन्माद की हँसी]

—:o:—